पतलियो और मुह के बीच

पतलियों और मुंह के बीच

(कहानी-संग्रह)

राजकुमार राकेश

साहित्य निधि

29/59 ए, गली न० 11, विश्वास नगर,

शाहदरा, दिल्ली-110032

© लेखक

मूल्य 50 00 रुपये मात्र

प्रकाशक साहित्य निधि
29/59 ए, गली न० 11, विश्वास नगर
शाहदरा, दिल्ली-110032

प्रथम संस्करण 1989

मुद्रक एस० एन० प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032

नवजीवन की,

ऊषा

केवल तुम्हे ।

लेखकीय

भारतीय समाज म मूल्या का मोह-भग स्वय म एक मौलिक उपलब्धि है, जिसके फलस्वरूप जीवन के हर क्षेत्र म व्यापक परिवतन हुए ह। घार परम्परावादी भी, जा आधुनिकता का एकदम नकारने की बातें करते ह, इन परिवतनो से अछूते नही रह पाए ह। इस सदर्भ मे कहानी कला भी अपवाद नहीं है, हा नहीं सकती।

प्रेमचन्द-युग से चलकर नौवें दशक के उत्तराध तक पहुच पाने मे कहानी ने परिवतन और प्रत्यावतन के असख्य पडाव लाघे है। इस प्रक्रिया ने कहानी मे एक ऐसी दशा को जन्म दिया है जहा सभी कुछ अस्थिर है। यह सब यदि क्रमिक विकास के रूप म ही होता तो महत्त्वपूण हो सकता था। पर यहा तो बौखलाहट और आक्रोश मे एकदम छलाग लगाने की कोशिश है। प्रगतिवादी बनने की होड म फामूला लेखन आम बात है। राजनीति मे भले ही यह सभव हो, परन्तु लेखन मे यह कैसे सभव है कि जिस आदमी ने कभी ग्रामीण जीवन की झलक न देखी हो, वह ग्राम्य समस्याओ का विशेषज्ञ बनकर प्रगतिवादी मसीहा हो जाए और एक ठठ ग्रामीण महानगरीय जीवन की झलक पाए बिना, महानगरीय दयनीयता पर धडल्ले से लिखे।

प्रगतिवादिता की इस होड मे आन्दोलन, बरसाती खुम्ब की तरह उग आते है। वही एक गडगडाहट कौंधी और खुम्ब ने कहानी की गीली जमीन को ढक लिया। फिर आलोचक खेमेदार दोफाड हुए आदोलनो की कसौटी पर कहानी की परख करने लगे।

होना तो सिफ यह चाहिए कि अपनी मौलिक अनुभूति और रचनात्मकता के स्तर पर अमुक कहानी कहा तक अपने सामाजिक सदर्भों एव परिवेश से जुडी हुई है। पर होना उल्टा है, उसकी साथकता पर प्रश्नचिह्न लगाते है, क्लिष्ट नारेबाजी, शीतयुद्ध, लेखनीय प्रतिबद्धता और प्रगतिशीलता के बैनर!

नए समाज की रचना का उत्स कहानी की उपादेयता है जो व्यक्ति की तडप को उसकी जीवतता स जोडती है। इस प्रकार कहानीकार की सकल्प शक्ति महत्वपूण है न कि उसको प्रतिबद्धता। इसलिए किसी भी कहानीकार का मूल्याकन

उसकी रचनाधर्मिता और लेखकीय ईमानदारी के अनुसार ही किया जाना चाहिए।

प्रगतिवादी कहलाना भर ही मसीहा हो जाने का पर्याय नहीं है और न ही अस्तित्ववादियो की वकालत का मेरा कोई इरादा है। परन्तु अस्तित्ववादी चिन्तन से प्रभावित लोग जो मोक्ष/आदि की बातें करते हैं, क्या वास्तव मे जीवन की विषमताओ से ही आक्रान्त नही हैं?

सिर्फ कीचड उछालने भर मे कुछ नही होगा। लेखकीय लक्ष्य नए समाज की रचना है। इस हेतु प्रश्न वाद या निर्विवाद का नही है। कुछ जरूरी अगर है तो अपने परिवेश की समझ और सवेदना! क्या आलोचक का यह दायित्व नही हो जाता कि वह आलोच्य लेखक के परिवेश एव सवेदन म पहुच पाने का प्रयास करे। लेखकीय व आलोच्य कर्म, दोनो म स्व० ईमानदारी का भाव परस्पर हो, यह आवश्यक है। कहानी सार्थकता का आभास दे व पाठक की परिष्कृत चेतना की माग को भी पूरा करे। यह नि सदेह लेखक और आलोचक दोनो का उत्तरदायित्व है। न कि महज नारेबाजी का उलझाव! जो सिर्फ छपने के लिए लिखते हैं और जो सिर्फ आदोलन के लिए समालोचना करते हैं, वे न तो समकालीन कहानी के लिए प्रतिबद्ध है और न ही कहानी के उद्देश्यो के प्रति!

इधर कुछ दिनो से लेखको को प्रातीयता के आधार पर देखा जाने लगा है। विशेषकर कुछ बडी पत्रिकाए लेखको को छोटे व बडे राज्यो के आधार पर बाटने लगी हैं। शायद कुछ बडे सम्पादको एव प्रकाशको का यह मत निश्चित हो गया था कि उत्तम प्रकार के लेखक सिर्फ महानगरो म ही पल बढ सकते हैं। अब छोटे छोटे गावो से भी उनके पास रचनाए आने लगी तो वे हक्काबक्का से यह निर्णय कर पाने मे असमर्थ होने लगे कि क्या बेहतरीन रचनाए महानगरो से बाहर भी रची जा सकती हैं। तब उन्होने कहना शुरू कर दिया कि छोटे से अमुक प्रात से भी कुछ अच्छी रचनाए आने लगी हैं। फिर भी व्यापक स्तर पर यह हड्डी उनकी हलक से नीचे उतर पाने मे असमर्थ सी ही रही।

लेखक तो लेखक है चाहे वह लन्दन मे रहे या भारतवर्ष के ठेठ ग्रामीण अचल के किसी छोटे से गाव म। प्रत्येक का अपना परिक्षेत्र है। यदि लन्दन का लेखक ग्रेट-ब्रिटेन मे बसे प्रवासी भारतीयो की दुर्दशा पर बेहतर लिख सकता है तो हिमाचल प्रदेश के छोटे से गांव का कहानीकार पहाडी जनजीवन की दुरूहताओ एव विषमताओ पर सफलतापूर्वक अपनी लेखनी चला सकता। सिर्फ विषय के आधार पर श्रेष्ठ हो जाना क्या क्लिष्ट नारेबाजी नही है? प्रश्न तो सिर्फ यह है कि क्या अनिवार्यत बडे प्रान्त का लेखक छोटे प्रान्त के लेखक से बेहतर ही लिखता है? या कि बडी पत्रिकाओ मे कहानिया सिर्फ प्रातीय प्रतिनिधित्व के आधार पर ही छप सकती हैं, स्तरीय लेखन के कारण नही। और बहुधा तो सिर्फ

नाम छपते है।

एक खतरनाक Hypothesis और है। सन्‍ज आफ द सॉयल यानी धरती-पुत्र ! जो पत्रिका जिस प्रदेश से छपती है उसमे उसी प्रदेश के लेखको को छपना चाहिए ! (चाहे उनका लेखन समग्र राष्ट्रीयता से कितना ही घटिया क्यो न हो !) इस प्रकार की सोच दोधारी काटने वाली तलवार की तरह है। एक तो इससे राष्ट्रीयता की भावना को गहरा धक्का लगता है, दूसरे, लेखन की स्तरीयता पर अनिवार्य रूप से प्रश्नचिह्न लगता है। नवलेखन को प्रोत्साहित करना उत्तम नीति है परन्तु उसमे अनवरत उन्नति तो होनी चाहिए, यह भी आवश्यक है। सिर्फ अपनी ही छूरी के गिर्द घूमते रहकर छप जाने को मौलिक अधिकार मान लेना, न तो स्वस्थ लेखन के लिए उचित है और न ही लेखकीय भावना की प्रगति के लिए। यदि हम दोषारोपण सिर्फ सम्पादको एव प्रकाशको पर ही करते रहेगे तो लेखन स्वय अस्वस्थता का शिकार होगा। लेखको को भीतर झाककर देखना भी अनिवार्य है।

मूल्यो के मोह भग की बात चली थी तो यह कहना अनुचित न होगा कि आज का लेखन व प्रकाशन तिकड़म, चाटुकारिता व अवसरवादिता आदि से जुडा हुआ है। पर सिर्फ रचना का छप जाना ही उसकी सार्थकता, उपादेयता एव स्तर की कसौटी नही हो सकता। छपने मे देर हो सकती है, पर स्तरीय रचना का महत्त्व चिरस्थायी होता है। सिर्फ तिकडम और दोस्ती के सहारे छपकर बडा बन पाने की होड क्या प्रदर्शित करती है ? मेरा विश्वास है कि यदि कहानी मे दम हो तो, सघर्ष से ही सही, वह अपना स्थान बनाएगी जरूर ! उस सघर्ष का भी अपना, निजी एक महत्त्व है जो व्यक्तित्व की गम्भीरता एव शालीनता प्रदर्शित करता है।

इधर हिमाचल प्रदेश मे लेखन की आकुलता ने जोर पकडा है। कुछ कहानीकार राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित हुए हैं तथा कहानीकारो की एक नयी पंक्ति आ खडी हुई है, जिसने अपने परिवेश की विसगतियो की कहानी का विषय बनाकर सार्थक लेखन की चुनौती को स्वीकारा है।

यदि राष्ट्रीय स्तर की कुछ बडी पत्रिकाए लेखको को प्रान्तीय लेखन म ही बाटने मे सतोष अनुभव करती हैं, तो कहना अनुचित न होगा कि हिमाचली लेखन स्वय चुनौती सिद्ध होगा।

शिमला
1 अक्तूबर, 1988

—राजकुमार राकेश

क्रम

पतलियो और मुंह के बीच

चढतू भाईचारे मे उसका भतीजा लगता है। साधुराम को अपनी प्रतिष्ठा का बहुत मान है। उसकी बात चढतू नही टालेगा। कतई नही ! आखिर वह गाव का मोहतबर आदमी है। उप सरपच है। मक्खू नेता का घनिष्ठ है बिल्कुल खास नेता का अतरग होना एक ऐसी योग्यता है जिसे नजरअदाज करने की जुरत आज के युग मे कौन कर सकता है। मक्खू नेता के स्वागत समारोह के लिए ही तो चदा मागा जा रहा है। गाव सडक से जुडा उसका उद्‌घाटन स्वय मे ऐतिहासिक घटना है पूरे गाव का फायदा है फिर मास-भात अकेले मक्खू साहब ही तो न खाएगे। सब ग्रामवासी चढतू भी खाएगा चढतू के तीन लडके भी खा लेगे। पचास रुपये सवजन हिताय चदा दे देना कौन बडा कारतूस फोडना है।

पर चढतू दो टूक था। उसने जब नही मानना होता है तो सगे बाप की भी नही मानता। साधुराम किस खेत की मूली मक्खू बडा होगा अपने छप्पर पर। चन्तू ने उससे क्या लिया और चढतू को उसने क्या दिया। तीन-तीन लौडे उसकी कमाई पर तीर हो रहे हैं और वह रोज ही कमान बनता जा रहा है। लगवा दिया मक्खू ने एक को भी नौकरी। पांच साल से झीक रहा है चढतू उसके पीछे ! साधुराम बहुत मक्खू का लाडला बनता है यह करवा देगा, वह करवा देगा। जिदा ही चढतू को स्वग मे उतार देगा चढतू को ! हा हा हा अनपढ चढतू को !

"मक्खू सा ब से अभी काम लेने हैं, चढतू ! तेरा अभी एक भी लडका सरकारी नौकरी मे नही लगा है।" साधुराम ने पासा फेंका।

साधुराम दांव बहुत होशियारी से चलाता है। फिर सरकारी नौकरी ऐसी हड्डी है जिसे चबाने का आन द सभी लेना चाहते हैं। कही अच्छा महकमा हाथ लग गया, विटामिन 'आर' वाला तो सोना ही सोना जो नौकरी घर के पास हो तो जमीन-खेती का काम 'हाबी' बनकर लुढकता है। 'आधे क्लक आधे किसान' या 'आधा मास्टर—आधा मजदूर' चाहे बने रहें। कुल मिलाकर साधुराम की बात मे वजन था। पर चढतू ने 'हम भी उस्ताद हैं' के लहजे मे उत्तर दिया, "नौकरी।

हा हा हा ! कानो मे पीक पड गई सुनते-सुनते तीन 'हालड (वणशकर) दस दस जमातें पढ़कर महरे की तरह घूमत है न काम धाम ! नौकरी दगा मक्खू, तब तक चन्तू की कमाई पर डकारें मारो । गधो का गाह्या हुआ है चढतू के बाप के घर ।"

साधुराम कृपणता स हसा, ज्या हसी परत-दर परत खुलन म ही गुम्र पाती हो। मालूम था चढतू बिदकता है। सावधानी स नकेल पर हाथ कसते हुए बोला, "अबकी बार पक्का ! तेरे सामने कान खीचूगा मक्खू के । जो अबकी टकराया तो मुझसे बुरा पटकने नही दूगा गाव म !"

चढतू की आखा म बेबसी का एक तारा टिमटिमाया। आवाज का स्टीयरिंग ऊपर की दिशा मे स्वत घूम गया। यू उसने स्कूल का द्वार नही दखा है। जो थोडा बहुत काला अक्षर मच्छर बराबर भी जानना होता तो आज दश को उच्च कोटि का एक और व्यग्यकार मिल गया होता। बोला, "तूने कह दिया तो लग गयी हरामखोर की नौकरी लाख झकता हू इन सुअर के बच्चो को कि हथोडी-टकी पकडा और पेट भर खाओ। पर दस जमातें जो पढे हैं अनपढ बाप की तरह पत्थर तोडेंगे तो दो और दो पाच कौन करेगा !"

साधुराम राजनीतिज्ञा के कान कुतरते थे। सेना म पनपा उनका रूखा स्वभाव राजनीति के कीटाणुओ के प्रवेश के साथ मक्खन चुपडी लकडी की तरह मुलायम हा गया था। हथली पर से आदमी फिसल जाए तो किस काम की उनकी राजनीति 'मैं सच कहता हू चढतू मूछ कटवा दूगा जो इस बार तेरा काम न हुआ !"

चढतू जानता है दूसरे की छाछ पर मूछ कटवाना चाहे कठिन हा पर मूछ नरम करना आसान है। उसके क्रोध का बिदका हुआ घोडा कुलांच भरने लगा, 'तू बडा हरिश्चद्र का बाप है। झूठ तो चढतू बोलता है "

साधुराम की हसी की अगली गाठ खुल गई—'मैं जानता हू तू मजाक करता है। पचास रुपये तो तेरे पैर का मैल है।"

चढतू का पारा कुछ डिग्री और ऊपर चढकर खौलने लगा, "फागू से माग वह दगा चढतू ने ठेका नही लिया है।"

फागू साधुराम का बाप था जिसका चतुर्वार्षिक श्राद्ध महीना भर पहले धूम धडक्के से सम्पन्न हुआ था। अठठाइस मन चावल की धाम रची थी। महा-ब्राह्मण साढे तीन सौ नकद और ढेरो सामान बटोरकर लौटा था। फागू का सगा बडा भाई माधू चढतू के बाप गैडा का बाप था। पर मदमस्त हाथी के पाव के नीचे सबका कडी से कडी बात कहकर साधुराम के मम पर आघात के प्रयोजन से चढत ने कहा था पर उसकी हसी की अंतिम गाठ भी खुल गई, "बात तो तू

कलाकारो वाली करता है।"

चढतू अपने वारा की निष्क्रियता से तिलमिला कर रह गया, हार हुए जुआरी की तरह ! आखिर विष बुझा चाकू फेंका, "अपना काम निकालन के लिए लोग गधे का भी बाप बना लेते हैं पर चढतू चमार का पूत जो घाटा पैसा भी दिया कोई चूतड तक जोर लगा ले सरकारी नौकरी का पैसा नही है यहा। रग मरवानी पडती है खडड म !"

पहाडी नाले म चट्टाना का जगल ! गाव से थाडा ऊपर। चारो ओर नीरवता का साम्राज्य। घुटनो के बल रेंगते बच्चे क से गाव के जीवन का अहसास तक नही। बरसात मे उच्च रक्त चाप के मरीज के खून की तरह उफनता पहाडी नाला आज कल पानी की बूद के लिए तरस रहा था।

ठक ठक ठक ! टकियो पर पडती लोह की हथौडी की कितनी ही आवाज नीरवता का बेंधती हुई लगातार बज रही हैं। विशालकाय चट्टाना क टुकडे करती विकराल ध्वनिया। बजती ही जा रही हैं। अनवरत।

चढतू, घौना और भूरा की त्रिकालदर्शी सेना दैत्यो सी कुम्प चट्टानो से जूझ रही है। दो चार चरवाहे आमने सामने के जगला म होए हाए' अथवा जिन्दा रह मरणजोगया' की आवाजो से चुप्पी की पसलियो म एकाध कील गाडकर पुन चुप हो जाते है। कभी कोई भूला भटका पक्षी प्यास से व्याकुल किसी घने वृक्ष की छाया म दुबका चहचहा देता ह।

चढतू न हथौडी छोड माथे का पसीना पोछा। सामने रेत तले दबी आग को कुरेदा और चिलम भर ली।

भूरे ने काम रोककर मुह पर हाथ फेरा। मिट्टी की सुराहीनुमा औली से लोटे मे पानी उडेलकर पिया और चढतू के सामने आकर पत्थर स पीठ टिका पसर गया।

घौना घन से चट्टान मे गडी टकियों पर वार कर रहा था। ठाक ठाक ठठाक ! और चट्टान दो फाड।

भूरे ने चबाते हुए तिनके को मुह से थूकते हुए आवाज दी, "आजा ओए कमाऊ पूत मार ले एकाध सूटा !"

चढतू मुह और नाक से धुआ उगलते तनिक खासते हुए बोला, "कमा ले प्यारे लौडो का पेट भरने के लिए, जब्बरा होगा तो भूखा मरेगा कौन पूछेगा तब ! अपने हाथ का आसरा ही भगवान है, भाऊआ।"

घौना आ गया। चिलम भूरे के हाथ मे थी। बैठते हुए अपने पोपले मुख की हवा का नियत्रण त्याग बोला, "ले आ ओरे दे मारिए सूटा।"

भूरे ने गहरा कश खीचा। भरे हुए फेफडो को खाली करते हुए चिलम घौना

की ओर बढा दी। चढतू रात के अधेरे मे बिजली सा कौंधा, "ससुरे समझते हैं झमकू की कमाई है नाले म पत्थर फाड़ा और नीचे नाट ही नोट गड़े मिलते हैं जब चाहा मांग लिया चदा "

भूरे ने जिज्ञासा प्रकट की, "झमकू कौन ?"

चढतू बोला, 'अरे, इतना भी नहीं जानता झमकू को नही जानता हि हि हि ! ओग नेता रा क्या नाव मक्खू हा, हा, उसका बाप था झमकू झमकू लबरदार।"

भूरे न हसने म कजूसी नहीं बरती। चढतू और घौना अपनी अपनी शैली म इसम शामिल हुए ' मैं तो लाल पाई न दू स्सालो को पचास रुपये दे दो मक्खू के पेट म वकरा भजने के लिए। भला भैसे की कमाई है? कौन-सा साला वाप लगता है।"

घौना ने नि श्वास खीचा, "मुझसे तो ले गए माई साघुराम कह रहा था मेरे लडके को मक्खू नौकरी लगवा देगा।"

' पचास रुपये का मांस घर लाए तो टब्बर तीन दिन खाएगा," भूरे ने गणित जोडा।

घौना पर पश्चाताप का सूरज अपनी उष्ण रश्मियो से आग उडेलन लगा। वह मारा गया। दोनो शैतान बच गए। मुओ ने पहले क्यो नही कहा। वह भी न दे तो पचास रुपये। चिलम छोड काम की तरफ दौड़ा जैसे पचास रुपय शीघ्र पूरे करना चाहता हो। चदा देने का अनौचित्य चाशनी की कड़ाही मे दूध डालते ही मैल की तरह तह पर आ गया।

चढतू ने बुद्धिमत्ता पर अगड़ाई ली और भूरे ने सतोष की सास भरी।

पावती घाटी मे प्रवेश पाते ही दिखाई दी। चढतू साहबो वाले टैम रोटी खाता है। शिखर दोपहर पर यानी बिना घडी देखे लगभग एक बजे। पावती पहुचा देती है रोटी उसे नाले मे। भूरा और घौना खाकर आते हैं।

पावती पास आ गई। भूरा चिलम छोडकर उठ गया।

चढतू औपचारिकता निभाने लगा, "भूरे! खाले रोटी तू खा ले ओए, घौन चार कौर "

"नही "

"नही नही तू खा। हम तो खाकर आए है।"

पावती ने गाठ खोली। देखते ही चढतू का भोजन छकने का सारा उल्लास क्षण भर मे ही कपूर के धुए-सा उड गया।

मक्का की तीन रोटियां थीं। पाव-पाव आटे से बनी। बाजरे के मिश्रण ने उन्हें सख्त कर दिया था।

'साग नही आज ?" आक्रोश भरे शब्द गाली की तरह पार्वती की ओर लपके पर उसने झट से बचाव का आवरण ओढ लिया, 'कहा है टैम खेत-ते साग चुगने का तडके से चूल्हा चौका, गोबर उठाया—पाथा, घास काटा छीला, ढोरढगरो को सानी पानी म क्या कहू ! उधर बुडढा जान खा रहा है कब चुगू साग ?'

ढेर सारे प्रश्न उसने चढतू की ओर उछाल दिये।

दो रोटिया पर पिसा हुआ समुद्री नमक रखकर उसने चढतू की ओर बढाया। चढतू ने बाए हाथ को थाली की तरह पसारा। फिर दाए हाथ स कौर तोडन लगा। लाल मिर्च साबुत थी। छाछ का लोटा उसकी ओर बढाते हुए पार्वती ने कहा, "परसो की थोडी सी छाछ बची थी ले "

चढतू के चेहरे पर एक सूरज उगा। बेबसी का सूरज। हरे साग के बिना छल्ली की रोटी कैसे धकेलेगा गले के भीतर। यह नासमझ इतना भी नही समझती। छाछ ले आएगी साग की जगह बिन बरसे मेघ सा गरजने लगा, "आ ओए भूरे ! देख तो सही यह राड मेरे घर को रेत बना देगी। इतना भारी खर्चा घर का और तीन तीन सब्जिया खिला रही है रोटी पर लूण, मिर्च और छाछ तीन तीन सब्जिया ! घर का घरयाबखडा करके रहेगी पट्ठी !"

भूरा और घोना काम धाम त्याग भौचक्क चढतू के रहस्योदघाटन की प्रतीक्षा मे उतावले हो रहे थे। सब्जियो का नाम सुनकर हसे। उनकी हसी सब्जियो पर नही थी। सब्जी तो वे भी प्राय ऐसी खाते है, पर चढतू की भाषा शैली ने उन्ह खूब प्रभावित किया था।

बहुत बार हुआ है जब कभी रास्ते म चलते चलते अनायास साधुराम के घर स छौंके की बास नथुनो के भीतर घुस गयी और मुह पानी से भर गया। अदाजा तो गध स लग ही जाता है। कैसा होता होगा छौंकी सब्जी का स्वाद ! अपना पर चढतू भी तो अपनी ही तरह का आदमी है। साग के बिना रोटी नही खाता। यू तडके छौंके की उसने कभी परवाह नही की, पर साग चाहिए। बस, हरे पत्तो और मोटे चावलो का पका अधपका मिश्रण । चटपटा नमक मिर्च से भरपूर। सी-सी न हो जाए तो खाया न खाया बराबर।

' पार्वती उसके व्यग्य पर हस दी। उसकी हसी म पहाडी मदिर की टुनकनी घटियो की टकार नही थी बल्कि किसी अग्निशमन गाडी म रफ्तार से बजते घटो का शोर था।

चर चर चर चबाने लगा चढतू रोटी। छाछ लाल मिर्च यू चबाता जैसे सलाद हो।

यकायक गिद्धो का एक झुड शोर करता सिर पर से निकल गया। जिज्ञासा

ने सब आखा को ऊपर उठाया। पावती ने सूचित किया, "सूहणू की गाय मर गयी। फादी रगडकर ले आया है नाले मे। चाम निकालेगा मास पर झपट पडे है गिद्ध !"

"भूखे हैं बिचारे," भूर ने अपनी चेतना को समेटा।

"मास रोज ही थोड मिलता है," घौना ने कहा।

फिर ठक ठक चालू हो गयी। पावती न आकाश मे घिर आए बादलो की ओर देखकर चिता प्रकट की, "बादल छा गया है पता नही ओबर म इस बार कनक आएगी भी कि खेत म ही सड जाएगी।"

चढतू ने कौर गल क भीतर ठूसते हुए वद्ध योगी की तरह थथलाई वाणी म उत्तर दिया, 'तू तो भगवती है जानती है क्या होने वाला है। भेज दी न धमराज ने खबर !"

उसकी पीठ पर ज्यो चाबुक कौंधा। जरा रोष मे आकर कहा, "सुनता तो है नही पिछली धान की फसल खेतो म ही नही रह गयी थी, इतने आले बरसे थे कि दाना हाथ न लगा सिफ छछरे खडे रहे थे "

चढतू लबी सास छोडते हुए बोला, "धान आए होत तो बैसाख की इस जलती दोपहरी म यहा नाले म खपना पडता ?'

उसने चील के पखो की तरह हाथ पसारे। दुष्कीर्ति की तरह हथेलियो पर उभरे मरे हुए रक्तको के छाले दिखाकर झुझलाने लगा, ' दस रुपये दिहाडी पर टब्बर के भूखे पेट भरने के लिए पत्थर कूट रहा हू। तीन-तीन 'हालड' जने तूने, दस जमातें जो पढ गए पर किस काम के इधर बुडढे की बीमारी खपता है चढतू ता खपे किसी के बाप का क्या जाता है क्यो भाई भूरे है भाई घौने ?" इस बार उन दोनो ने नही सुना शायद ठक ठक ठक

"मैं कम खप रही हू इस जजाल म ' पावती भी कबूतर के सीने की तरह तन गई।

"अच्छा ! अब भाषण बद कर और दौड जा घर को," चढतू के पौरुष की भट्टी पुन दहकने लगी, ' पडत को बुलाकर बापू को दिखा ले। घर पर ही होगा। आज इतवार है धागा धूणी ले सारा दिन कमाणा और रात को सोने का टेम नही तू मुझे कोल्हू का बैल समझती है।"

"जतर गले बाध दिया था। पडत ने धूणी दी थी कल फिर बुला लाऊगी "

गैंडा कई महीनो से बीमार है। लाचार। बिस्तर से बधा हुआ है। न जी रहा है न मर रहा है। लोग हैरान हैं कि ऐसी भी क्या बीमारी जो ठीक हाने का नाम नही लेती। जरूर काई भूत प्रेत लड गया है। बडे चेले ओझो को दिखाया। खूब

झाड-फूक करवाई पर मज बढता ही गया।

दवाइया महगी ह। चढत कहा से फूके अग्रेजी दवाई मे पैसे ? बुड्ढे न पूरी जिंदगानी अग्रेजी दवाई को हाथ नही लगाया। अब मरती बार धम पर कलक लगाए। गुरिया बैद की दवाई अच्छा असर करती थी गैडा को। पर अबकी बार तो ओपरी है। भूत प्रेत की बीमारी म दवाई से क्या होगा ? कितने ही मुवक्डो की बलि दी, कुलजा दवी को पहर चढाया—भत-प्रेतो की बहुतरी झाड स्वाहा की, मन मनौतिया मनाई पर गडा नही छोडता बिस्तर। अत समय आ गया शायद। ऐसे मे क्या होगा, फिर भी कोशिश करना तो इसानी फज है। पर चढतू क्या करे। सब काम छोड बाप के सिरहाने बैठ जाए तो टब्बर खाएगा क्या ? अकेला वह कमाने वाला। सात आठ जिऊ निगलने वाले।

पडत त्रिलोकीनाथ माने हुए चेले है। उन्होने विश्वास दिलाया है, उनका इलाज गैडा का ठीक करगा जरूर ! मरे हुआ को जीवन दिया है उन्होने। बडा विश्वास करती है पावती उन पर। कितने बडे आदमी है। स्कूल मे पढात ह। बहुत पढे लिखे हैं। हजार रुपय से कम महीना तो क्या पात होग ? पर पावती को अपना मानत है। गैडा का इलाज करन आत है तो घटो उनके पास बैठे रहत हैं। यू कभी किसी के घर नही जाते। पर पावती की बात कभी नही टालत। अपने आराम की परवाह नही। कितना स्नेह रखते हैं पावती के साथ।

पावती जवानी म बडी सुदर थी। अब पाच बच्चे हो जाने पर भी अच्छी कमनीय देह है उसकी। चढतू मरियल है। खुरदरे जिस्म का मालिक। पेट मे कुछ पडे, चिकनाई वगैरह तभी ता कुछ सूरत उभरे। गाल की हड्डिया पिचकी हुई है। त्रिलोकीनाथ की तरह दूसरा कौन है गाव मे तभी पावती को भी गव है !

पिछले कल ही रात गडा के पास कितनी ही देर बठे रहे। कागज पर लिखकर, सरसो के तल म भिगो पलीतो की धूनी दते रहे उसे। दस जतर गगाजल मे धोकर पिलाए। कभी किसी को दो-तीन से ज्यादा जतर नही दत एक साथ। 'नाहरसिंह जैसी आत्मा स उलझ पडे है उसके लिए। पावती के यहा ही सोए रहे बेचार रात भर चढतू दिन भर का थका मादा पहरसवेल सो जाता है। दूसरे कमरे मे खुर्राट मारता है तो आधा कोस दूर सुनाई देता है। अजब नीद है मुझे की। गाव के गवार लौंडे कहत है कि पावती और त्रिलोकीनाथ की बहुत गहरी छनती है !

साझ ढलने लगी थी। पावती त्रिलोकीनाथ को बुला लाई।

अपने अपने कामो से लौटे थके मादे ग्रामवासी गैडा का हाल पूछन आय। कमरे के कच्चे फश पर बिछी बोरियो पर बैठकर पूछते है, "गैडा कैसा है ? कुछ फक पडा कि नही ?'

फर्क क्या नही पडा, खैर ! पड जाएगा। भूत प्रेता की बीमारिया अर्सा तो

लेती हैं ठीक हान म। चन्तू बचारा विपत म फसा है, भाग्य उसका फिर गप्पें राजनैतिक बहस, हुक्का-पानी मरयू के आग की चर्चा, चना दन न दने का औचित्य महफिल बढती ही जाती है छाछ म पानी की तरह !

त्रिलोकीनाथ का बडा मान है गाव म। अनुभवी डाक्टर की तरह उन्होंने गैडा का मुआयना किया। फिर प्रवचन शुरू। व बोलने लग तो शेप चर्चाए खत्म। ज्ञान का फलाव शुद्ध आचरण, धार्मिक होने का महत्व, ईश्वर की महिमा, दवी देवताओ का प्रभाव, भूत प्रेतो के बचाव आदि कितने ही अछूते विषय। उनक ज्ञान पर हैरान होते हैं लोग। पूरी किताब है। चलता फिरता ग्रथ ! भगवान का गांव के लिए भेजा गया दूत। दूसरा का हितचिंतक। सभी के लिए हितैपी मुफ्त सहायक कोई फीस-वीस नही !

पावती उनके लिए दूध का गिलास लाई। "बाकी लागो के लिए चाय आ रही है" यह साथ सूचित कर दिया। चढतू बेचैन-सा है "कुछ करो, पडत जी ! मैं तो तग आ गया हू।"

"प्रयत्न जारी है—उपलब्धि की प्रतीक्षा धैय से करें, ईश्वर पर भरोसा रखा।" सांत्वना म उत्तर मिला। कहते-कहत व दूध का घूट भरने के लिए रुक। दूध पर तैर रही मलाई की मोटी परत आधी मुह म घुस गई और आधी बाहर लटक कर गिलास मे उलझी दीखने लगी। न भीतर खीचत बनता था न बाहर उगलते। यहा बैठे बहुत स मुहो म पानी उतर आया।

चढतू को पानी निगलते वक्त नाले मे मिला छाछ स भरा एल्यूमिनियम का *कूबडा गिलास याद आ गया। पर अपना अपना*

फिर 'सडाप की ध्वनि हुई। त्रिलोकीनाथ जरा झेंप गए ज्यो किसी ने जूते का तला दिखा दिया हो। सहज होकर पुन समझाने लगे, "चढतू, बूढे प्राण हैं। क्या भरोसा, सास आई न आइ कुछ दान दक्षिणा जप-तप करवा दो तो धम हो अगली राह सुधरे '

"जा आप ठीक समझें "चढतू बोला।

"जप रख दो, पडत जी ! गैडा तभी ठीक होगा," बीच मे एक सलाह उभरी।

"जप स ही ठीक होगा, भाई !" एक समथन।

"बाकी उपाय तो सब हार गए "

'हां हा ! रखवा दो जप जरूरी है " दा तीन आवाजें एक साथ आयी।

"खच तो काफी पडेगा "

"खच की कौन मार लगी है चन्तू को बुडढे ने सपत्ति जोडी ही है खोया तो तिल नही" एक निर्णायक ध्वनि उभरी।

पावती न दो टूक फैसला सुना दिया, 'रखा जप जी बुजुग के लिए सब करूगी करान वाला ताकत दे।

निलोकीनाथ के खान पान म जुटी पावती ने दो तीन सब्जिया दाले, फल मेवे न जाने क्या क्या बना डाला। चडी जाप की कठिन तपस्या मे भली खुराक का महत्व अक्षुण्ण है।

दिन भर की कठिन यात्रा से थका सूरज पश्चिम के क्षितिज मे छिप जाने को आतुर था। पडत जी भोजन को प्राप्त हो रहे थे। रघ्घू दरवाजे के पीछे छिपा किनारे के चीरो से मुह मे टपकी लारो का भीतर समटता फटी निगाहा से उन्ह खाते हुए एकटक देख रहा था। जग्गू खिडकी म स झाक रहा था। वह मन-ही मन उस भोजन के स्वाद का अनुमान करता सूखे होठो पर जीभ फिरा रहा था।

हेमू रसोई के कमरे मे बैठा पडत जी की थाली म परोसे भाजन पर नजरें गडाए था। जैसे कोई भूखी बिल्ली बिल म घुसे चूहे की ताक म बैठी हो। झपट्टा मारने का लैंस। पर निलोकीनाथ की उपस्थिति म आतकित वह दीनता व भद्रता की प्रतिमूर्ति बना बैठा था।

निलोकीनाथ ने खाना समाप्त किया। फल और मेवो की बोरी थी। पावती ने हेमू को आदश दिया, 'आगन के घडे से लोटा भर पानी ला पडित जी हाथ साफ करेंगे।"

हेमू के गले म पानी का झरना फूट गया। कुछ बोल नही सका। वहा से उठना भी हानिकारक था। बाहर गया नही कि रघ्घू और जग्गू रसोई झपट लें और वह रह जाए।

इसी उपक्रम मे वह दसरी ओर कुछ यो ही खोजने लगा। तभी निलोकीनाथ लोटा हाथ मे उठाए हस की चाल से दरवाजे की ओर बढे।

तीनो भाई भूखे गिद्धो की तरह रसाई पर झपट। रघ्घू ने खीर के खाली पतील पर हाथ मारा। केवल बची एक झीनी सी परत, जो कडछी से कुरेदी जा चुकी थी। हाथ से पोछ पोछकर चटकारे लेता हुआ वह उसे चाटने लगा।

जग्गू के हाथ एक दाल और सब्जी की पतीली लगी। एक का बगल मे दबाकर वह दूसरी पतीली की नमकीन परत पर टूट पडा। पावनी झीकने लगी—"मर-भुखे हैं मुझे! क्या सोचता होगा पुरोहित कुत्तो की तरह लपक्ते है।" बाकी बची खाली पतीलिया उसने अपने कब्जे मे कर ली थी। हेमू के हाथ खाली रह तो उसने निलोकीनाथ की जूठी थाली पर अवैध कब्जा जमा लिया।

तभी चढतू आ गया—"ल्याव रोटी दें पट जल रहा है दिन मे भी तूने आज राटी नही पहुचाई। सारा दिन भूखे पेट तोडता रहा पत्थर।"

इस कथन की विवशता से अनभिज्ञ पावती ने रणचडी के भाव चेहरे पर समेट लिए, ' घर मे जप हो रहा है। खाना लेकर नाले म कैसे पहुचती। इतनी सी बात नही समझता दो चार दिन की तो बात है। खुद ले जाया कर धम के काम म तरी रोटी का विघ्न अच्छा ता नही लगता।"

भूखे पेट चढतू के व्यग्य की धार पुरानी दरांती की तरह निस्तेज हो गई थी। वह चुपचाप बैठ गया।

पावती ने सुबह की पकी मकरा की दो रोटियां पीतल की थाली म डाल दी और वह सब्जी की एक खाली पनीली की पीली परत ग छूकर मुह म डालने लगा—"छाछ नही है क्या ?"

'कहा से होगी छाछ ? पुरोहित जी जप म हैं, इतना महनत का काम दूध होता ही कितना है जो उनसे बचाकर रघू दही जमाने के लिए चार दिन की तो बात है।" पावती न निमम आघात किया।

चर चर चढतू खाने लगा था ज्यो कोई भूखी भस अनमनी-सी भूसे मे मुह मारती जुगाली करने मे विवश हो। उसके उठते ही तीनों लडके पावती स उलझ पडे।

'हमार पल्ले म यही रूखी-सूखी रोटी घी लाकर दे " जग्गू तमका।

"कहा से लाऊ मैंने गाड रखा है क्या ? '

"पुरोहित को कहा से देती है ? ' हेमू ने हस्तक्षेप किया।

'शी !" अधरा पर उगली रख वह धीमी आवाज म बोली, "पाप लगगा तुझे ऐसा मत बोल ! '

रघ्घू ने विषय पलट दिया, "बापू कितना कजूस है। मक्खू सा'ब आ रह हैं। माधुराम के घर धाम पडगी मीट की धाम ! बापू न च दा दन स इकार कर दिया। कौन फटकने दगा हम वहां ?"

जग्गू ने चटकारा लिया "बहुत अच्छा मीट बनेगा !"

हेमू न उक्ति भिडाई, 'मैं ता चुपके से पानि म घुस जाऊगा। फिर देखी जाएगी जा होगा। '

' निकाल बाहर फेंकेंगे तुझे लोग " रघ्घू ने अपनी बुद्धिमत्ता जताइ।

"ता बापू पैस द सकता था। हम सब भी खा लेत, इतनी कजूसी यहा जप म तो सैंकडो लग रहे हैं '

'ओए, चुप रहो गधो !" जग्गू ने रोष प्रकट किया, ' धम क काम म ऐसे कटु वचन मत बोलो।"

"बापू ता द भी देता, पर भूरे ने उसे उकसाया हुआ है।"

' भूरा बदमाश है," हेमू न सुराग लगाया "खुद तो मीट खाता ही नही है हमारे पट मे लात मरवा दी।" जग्गू ने खुलासा किया।

"निपटेंग उससे," रघ्घू ने इरादा प्रकट किया।

आठ दिन के घोर जप ने भी भगवान का प्रसन्न नही किया शायद पुरोहित की दक्षिणा और सेवा सुश्रूषा म कमी खल गई हो अन्तर्यामी को।

गेंडा की हालत वर्कशॉप मे पडी मोटर की तरह लगातार बिगडती चली गई।

आज साधुराम ईद के चाद की तरह उगा था। पार्वती को डपटने के स्वर मे कह रहा था, "तुम लोगो को पता नही कब अक्ल आएगी। इसका कुछ दवादारू करो। हस्पताल ले जाकर दिखाओ।"

पार्वती ने क्रोध का घूट पीकर उत्तर दिया, "जप करवाया, ओपरी का इलाज चल रहा है अंग्रेजी दवाई से धर्म भ्रष्ट करें अब आखर मे?" साधुराम हस दिया। उसकी व्यग्य भरी हसी पार्वती को दग्ध चिमटे की तरह छू गई। फौज म रह चुका है। उसी का रौब डालता है। पार्वती जानती है अपने को बहुत समझ दार समझता है।

तभी भूरा और घौना चढतू को सहारा देते हुए लाए। उसने अपनी बायी आख हथेली से ढक रखी थी और पीडा से कराह रहा था।

'भाभी! इसकी आख मे पत्थर की किंकरी ने जख्म " भूरा प्रथम सवाद-दाता की तरह बोलने लगा था।

पार्वती ने चढतू की हथेली हटाकर देखा। आख से खून रिस रहा था। कुगू की तरह लाल थी आख। प्रयत्न से भी खोली नही जा रही थी। प्रकाश उसम विष बुझे भाले सा लग रहा था।

भीड जमा होने लगी थी क्या हुआ, कैसे हुआ' की उत्सुकता का सैलाब उमड चला था। फिर सुझावो की बाढ आने लगी।

"हस्पताल ले जाओ," साधुराम ने कहा।

इसे अनर्गल प्रलाप की तरह नकार दिया गया।

"ओए यह तो बुरा हाल है आख का।"

'गर्दिश का फेर है।"

"उधर सयाना बीमार है और ऊपर से यह बिपत "

"हस्पताल "

"ओए छोडो हस्पताल कल के लौंडे डॉक्टर बने है, क्या जाने इसके बारे मे "

"बिलकुल ठीक "

"परले गाव मे क्या वह सयानी आख मे कूडा निकालती है "

'हा, बहुत अच्छा "

"पता ही नही लगने देती "

"वही ले चलो "

प्रस्ताव स्वीकार हुआ और क्रियान्वयन मे क्षण भर की भी देरी नही की गई।

भूरा और घोना ने उसे पुन सहारा दिया। पावती पीछे पीछे चली। अपने भाग्य पर आसू बहाती साधुराम की निन्दा करती, "हर वक्त अपनी ही हाकता है। स्वार्थी, मक्कार! पडतजी परोपकारी हैं कितने ही विचार !"

भूरा और घोना समथन मे हुकारते रहे। चढतू कराहता हुआ दद की भयकरता की याद दिलाता रहा।

मक्खू साहब के आगमन पर उमडता जनसमूह नदी के बहाव की तरह दीख रहा था।

सडक का उदघाटन हुआ, सावजनिक सभा हुई, फिर जनता की समस्याए जानी गयी।

तत्पश्चात साधुराम के घर के आगन मे भोजन के लिए पातें बैठी। मक्खू साहब के साथ गाव के प्रतिनिधि स्वरूप साधुराम बैठे थे। राजनैतिक महत्व के क्रम मे शेष कायकर्ता उनके इद गिद सिमटे थे। हर कोई घनिष्ठता की इस परिधि मे सिमट जाने को आतुर था। उतावला आत्मसम्मान का आकांक्षी! पर भाग्य अपना ।

उस ओर शोर उठा, "क्या बात है क्या बात है ।"

'चढतू का लौंडा पात म घुस आया है।"

बाहर निकालो "

"मारो साले को हरामी मुफ्तखोर !"

'धक्के दकर परे फेंको कुत्ते को मुफ्त का माल रखा है समुरे को "

"ओए, जार से मार! कौन सा साला चाचे का पूत लगता है "

मक्खू सा ब न साधुराम से पूछा 'कैसा झगडा है?'

साधुराम ने व्याख्या की, 'चढतू का छोकरा पात म घुस आया होगा। पैसा नही दिया है उसन चन्दे का मुफ्त मे डकारना चाहते हैं।'

"नौकरी के लिए तो बहुत झीकता था चढतू 'मक्खू सा'ब ने याद किया।

"अरे छोडो भी! गद्दारा का ता सजा मिलनी ही चाहिए,' साधारण सी बात की तरह साधुराम ने हल्के दिल से जोडा।

"खुद भी नही आया चढतू?" मक्खू ने पूछा, जैसे इस समारोह मे आना कुम्भ पव मे गगा स्नान सदृश हो।

"वह आएगा भला? आपकी खिलाफत करता फिरता है, साधुराम ने कुशल विद्यार्थी की तरह अपने अध्यापक को खुश करने के लिए निशाना साधा। शायद पाच सात अक ही बढ जाए ।

सामन वाली पात मे बैठे साली पच ने हस्तक्षेप किया, "सजा तो दे द भगवान ने उस आपकी खिलाफत की सजा तो मिलनी ही थी "

प्रश्नसूचक दृष्टि से मक्खू ने साली की ओर देखा।

साली किफ्थ कोत्यूमनिरट की तरह सूचित कर रहा था, 'फूट गई आख हरामी की हो गया न काना!"

मक्खू की मुस्कराहट सद्य प्रस्फुटित पुष्प की भाति बिखरी। साधुराम खिलखिलाया। बाकी लोगो ने भरसक सहयोग दिया।

अनायास थोडी दूर कही इकहरी शख ध्वनि गूजी। मृत्यु की सूचक ध्वनि! फिर कुछ रोने चीखने की आवाजे उभरी।

' हाय, मेरा बापू !" हवा की लहरो के साथ उड आता एक स्त्री स्वर!

"आए! यह तो पावती है," किसी ने कक व कक कहा।

खाने वालो के हाथ जहा-के-तहा रुक गये। अनिष्ट की शका व्याप गई।

गाव की बावडी से पानी ढान वाले बसाखू झीगुर ने कधे स घडा उतारते हुए खबर दी, ' गडा मर गया।"

जगल की आग की तरह समाचार पात म फैल गया। क्षण भर का हवा ठहर गयी।

सामने क जामुन के पेड पर एक कव्वे ने 'का का' की। बहुत से कव्वे इस 'का का' मे शामिल होकर शोर मचान लगे।

बसाखू झीगुर ने हाथ बजाकर 'होए होए' कर उन्हे उडान का प्रयत्न किया। सब कव्वे पड के इद गिद उडन फडफडाने लगे।

क्षण भर के लिए सारा शोर गडड मडड हो गया। थोडी ही देर मे रुके हाथ पतलियो पर परसे मास भात और मुह के बीच पूरे आवेग स चलने लगे।

डूबती आंखो का दर्द

एक ऐसी सुबह जब आसमान म घने काले मेघ शेषनाग की तरह सहस्त्र फन फैलाये गरज रहे थे, उपस्थिति पंजिका में हाजिरी भरते वक्त मुख्याध्यापक के शब्द, "मि० भागव, आपके तबादले के आदेश हैं, नोट कर लें," बिजली की सी फुर्ती के साथ, पैने नश्तर की तरह मेरी ओर लपके थे ।

मुझ पर बिजली ही गिरी हो, ऐसा तो नही हुआ । सरकारी कमचारी हू, ट्रासफर किसी जीवधारी की मृत्यु की तरह अपरिहाय है पर क्षणिक झटका तो लगा ही, जिससे मुक्त होने के लिए, थके खिलाडी की तरह, नजदीक की कुर्सी का आश्रय लेना पडा था ।

दिमाग को तनिक सयत किया । सूख आए होठो पर जमी पपडी पर जीभ की नमी का लेप कर सप्रयास पूछा, 'कहा के लिए हैं ?"

वे कागज के पुलिन्दे मे उलझ गए थे । उपेक्षा क से भाव स बोले 'किन्नौर म कोई स्कूल है, पढ लीजिए ।"

यह झटका पहले से तनिक तेज था । चीन की सीमा से सटे किन्नौर जिले की कठिन भौगोलिक स्थिति अपने विद्यार्थी जीवन म पढी ही नही थी, अपितु उसे पढाता भी आया हू । फिर अपने समाज से कटकर दो तीन सौ मील दूर जाकर नौकरी करने से उत्पन्न एकाकीपन का अहसास, ऊपर स ! बिच्छू ज्यो डक मारकर सामने फश पर रेंगने लगा हो । यात्रा करते वक्त पडावा तक से लगाव हो जाता है । मुझे तो यहा पाच वप हो गए हैं । इस मिट्टी वातावरण व यहा के विद्यार्थिया स अपनत्व का गहरा रिश्ता है । मैं कैसे जा सकता हू !

पर सरकारी आदेश था कि डैन फलाए भावना के सलाब म धारा के विरुद्ध जिद्दी मछली सा तैर रहा था । बेबश दृष्टि किंकतव्यविमूढता की स्थिति म इसे देख रही थी ।

समाचार फूस म गिरी चिंगारी की तरह फैल गया । स्टाफ रूम मे, महगाई भत्ते की मिलने वाली अगली किस्त की चर्चा सहसा स्थगित हो गयी और मेरी ट्रासफर

का विषय आपात विवाह्-सा उठ खडा हुआ। मानो कोई ध्यानाकषण प्रस्ताव अनायास प्रस्तुत करते ही स्वीकार कर लिया गया हो।

ठीक से नही कह सकता कि बहस मे सम्मिलित सहयोगियो म से कितनो ने किन्नौर की जानकारी भारत सरकार के सर्वेक्षण विभाग द्वारा जारी मानचित्रा स ली थी पर वहा की भौगोलिक, सामाजिक व सास्कृतिक स्थिति अपने अधकारमय पक्ष को उकेरकर जिस विकराल रूप म चित्रित हुई उससे तो यही लगता था कि उनमे से अधिकाश लोग किन्नौर के जन जीवन का अधिकाश समय तक अग रह चुके ह। वैसे शायद उनम स कोई ही कभी किन्नौर जाने का अवसर लाभ उठा सका हो।

साय स्कूल बन्द होने तक प्राय यह सहमति उभर आयी कि मुझे किसी भी हालत म किन्नौर नही जाना चाहिए।

बहुमत की राय को मैने मान लिया कि मैं वहा नही जाऊगा, भले ही मुझे कुछ भी करना पडे।

सोच और भावना के स्तर पर मैं एक विचित्र आदमी हू। अपने सहयोगियो मे, कुछ विशेष अपवादो को छोडकर, मेरी गहन आस्था है। कुछ लोगा की यह मान्यता कि दुनिया स्वार्थी हो गयी है, दिन प्रतिदिन होती जा रही है, मुझे अपनी आस्था से विचलित करने के लिए भले ही उत्सुक होकर मेरे सोच मे कभी दरार न उभार पाई। एक अजीब सा भावनात्मक लगाव अपने खुरदरे म खुरदरे परिवेश क प्रति भी मैं अनवरत महसूसता रहता हू।

यू जिसे खुरदरा कहा जाता है उसम भी चिकनाई का एक अश मैने हर क्षण महसूसा है भले ही कभी अनजाने एकात म जब स्मृतिया कडवी होकर मुह का स्वाद बिगाड देती हैं, इस खुरदरेपन की रगडें मैंने अनुभव की हो पर समय सरिता मे यह रगडें भी हर बार मुझे कोमल स्पर्श मे बदलती अनुभव हुई है।

आदमी बन पाने की कोशिश मे, सभी मानवीय कमजोरिया मेरे भीतर भी पनपी है। घृणा, द्वेष, राग, आकषण, सभी कुछ। पर विश्वास न खोने की एक शातिर सी क्षमता है। जिसस हो सकता है, बहुधा मैं परेशानी मे पडा होऊ पर इस कभी चटक नही पाया। इसे यदि दुबलता भी कहा जाए तो मुझे अफसोस न होगा—रत्ती भर नही। क्योकि जिन आदमियो से मैं घृणा करता हू, वक्त पडने पर उन्हे अपने काम लाना बुरा नही समझता। पता नही क्यो? यह जानते हुए भी कि नैतिकता के स्तर पर यह अवाछनीय है।

"ट्रासफर ने इतना गमगीन कर दिया बन्धु!" स्टाफ रूम मे पसरे सन्नाटे का चीरता हुआ एक सहानुभूतिपूर्ण स्वर कमरे की खामोश हवा मे पसर गया।

सच ही, कितना सिमट गया था मैं अपने केंचुल के भीतर। उस समय तक कोई दूसरा आदमी वहा नही था। छुट्टी का घण्टा खनकते ही बधु वग हडबडी से

आफिस की ओर लपक पडा था। अटैंडेंस रजिस्टर पर अपनी विदाई कौन पहले भरेगा—मानो यह प्रतियोगिता चल रही हो, रोज ही चार बजे चलती है। चार बजे के बाद स्कूल कैंपस मे जैसे एक सैकिंड खोना भी माना अवध हो। इस दौड म आज मैं शामिल न हो सका था।

तूफान सन्नाटा छोडकर जा चुका था।

मन बात करने का कतई नही था। पर मन ही की कब होती है।

एक बेबस सी मुस्कराहट गालो पर खींचकर कुर्सी की ओर इशारा कर कहा "बठिए !"

प्रमलाल शमा उफ प्रेम शर्मा निर्दोषी !

सारी परिधिया ताडकर, नाम इलाके भर मे फैला हुआ है। पहाडी कविताए रचे जाने स लकर प्रेम उपन्यास लिखे जान तक ही इनकी 'हॉबी' सिकुडी हुई नही है। स्थानीय राजनैतिक हलका मे भी उनकी खामी मान्यता है। सुविख्यात 'वी०आई०पी० जी यथा पचायत प्रधान, विधायक व मन्त्री आदि तक के स्वागत समारोहा के लिए कविताए व मान पत्र लिखना तथा उन्ह ताल ठोककर लय व सुर म गाने तक उन्हें महारत हासिल है। इनकी भाषा इतनी मुलायम होती है तथा राग इतना सुरयुक्त, जिससे न केवल राजनैतिक दिग्गज उनकी साहित्य प्रतिभा के कायल हैं बल्कि आम जनता मे भी उनकी प्रतिभा का खासा दबदबा है।

ट्रासफर स इतना चिन्तित होने की क्या जरूरत है ?"

'और तो कुछ नही पर स्टेशन बहुत इटीरियर म मिला है," मैं अपनी निराशा नही छिपा पाया।

तो वहा कौन सा आपके बिना कोई काम अटका है ?'

"ट्रासफर है, तो जाना तो पडेगा ही।"

'अरे !" वे हसे, 'सरकार एसे हजारा आदेश रोज ही करती है इट'स ए रोटीन मटर !"

"पर मेरे लिए तो यह पहाड है, मि० निर्दोषी !'

'छोडा भी यार कसिल हो जाएगी।' उन्हाने दिलासा दिलाया।

"आप मरी मदद करेंगे ?" सकाच का आवरण कठिनाई म हटाते हुए मैंने पूछा।

"क्यो नही ?" जैसे वे सहायता के लिए तत्पर ही बैठे थे, "तुम हमारे अपने हो और एसे ट्रासफर रुकवाना मेरे बाए हाथ का खेल है !"

पता नही क्यो मुझे इस आदमी से घृणा है जो मैंने कभी नही छिपायी। बहुधा तो शालीनता की सारी सीमाए लाघकर इस चिंगारी का व्यक्त भी कर

चुका हू। अपने प्रति मेरा आक्रामक रुख जानते हुए भी इसने मेरी सहायता क
की पहल क्यो की, यह अनबूझ पहेली मेरे दिमाग मे तैरने लगी। मानो कोई म
गुड पर भिनभिना रही हो।

पर उसकी बात मे वजन था।

वह मेरी सहायता कर सकता था।

रोज की तरह प्रात कालीन सैर ने आज भी मुझे स्फूर्ति दी थी। अन्यथा वि
छोडते तो लग रहा था कि अग अग टूट रहा है।

दिल म एक काटा लगातार चुभता जा रहा था। रात नशे मे धुत्त बिस्त
गिरते ही नीद ने अपने आगोश मे समेट लिया था। आधी रात के समय फ
होठो और जीभ की सूखी खेती पर पानी की नमी फैलते ही जेब हलकी हो
अहसास एक फूले हुए गुब्बारे की तरह दिमाग मे उभरा था। कडवाहट क
रेला दिमाग से सरकता हुआ जीभ की नमी पर पुन फैल गया था। फिर वे
पर नीद हावी होने लगी थी।

निर्दोषी ने मेरा ट्रासफर रोको अभियान साथ ही चला दिया था।
मजवानी म आयोजित शराब की वह महफिल इस अभियान की पहली कडी

सर्वप्रथम निर्दोषी ने मुझे चन्दन से मिलवाया था। कटे हुए हाथ व लगा
तरह दहकती आखो वाला वह आदमी ! कभी भारतीय सेना म सिपाही रह
था वह।

"बदली ऐसे रुकती है क्या ?" निर्दोषी की बात सुनकर उसने हिंसक बिल्ल
तरह आखें तरेरी।

'आपकी कृपा से सब हो सकता है," कहकर निर्दोषी ने मेरी तरफ आ
इशारा किया कि आगे तुम कुछ कहो।

मैं अनाडी विद्यार्थी की तरह उसकी तरफ देखता रहा। तब वह मेरे क
फुसफुसाया, "आज पार्टी दे रहा हू आप जरूर आए यह कहो।"

मेरे भीतर कुछ पिघलता जा रहा था। चेतना पर कोई लिसलि
पदार्थ ! जुबान पत्थर की चक्की की तरह भारी थी।

मेरी माफत सारी बात निर्दोषी को ही करनी पडी थी।

चन्दन आग मे पडे पटाखे की तरह बरबस फट पडा, "यह वही मा
जिसने मुझे जान से मारने की धमकी दी थी।"

बात ठीक थी, पर पूरी तरह नही।

"उस दिन मैं दवाई की दुकान पर जा रहा था। इसने बाजार मे मझे र

"किसलिए ?" मैंने पूछा।

"तोड लग रहा है," उसका उत्तर था, जिसका अर्थ था कि शराब का नशा टूट रहा है।

शराब उसके जीने का सम्बल है सरकारी मुलाजिमो से मांगना उसका राज नीतिक विशेषाधिकार है। इसकी मांग की अवहलना करने का नतीजा था। तबादला ! मैं दो साथियो से यह तथ्य जान चुका था। यह जनता का प्रतिनिधि तो न था पर मन्त्री जी यानि सागर साहब के सरकारी हलको मे खासी मान्यता प्राप्त किए हुए है। तबादले का अर्थ—सजा ! जाने किस इटीरियर म ठोकरें खानी पड़ें। कहते हैं उसका आधा बाजू खड्ड म मछलियां मारने के लिए चलाए गए अवैध ग्रिनेड से छिछर होकर उड गया था।

"मैं शराब के लिए फूटी कौडी नही देता," दृढता की खनक मेरे स्वर मे व्याप्त थी।

"तुमसे पहली बार मांग रहा हू," उसने कपकपाते लहजे म कहा, "यह तो देना ही पडेगा।"

मैंने आगे चलने के लिए कदम उठाया ही था कि उसने मेरा बाजू पकडकर कहा, "मुझे भडास लग रही है, रुपये द दो "

झटके से बाजू छुडाकर मैंने कदम बढ़ा दिए।

तब अचानक वह हिंसक हो गया, 'तुझे देख लूगा तू यहां कैसे टिकता है।"

मैं पीछे मुडा "आपने फिर मुझसे कुछ कहा ?'

पता नही, वह क्यो सहम गया।

उसने चारो ओर दृष्टि घुमाई। लोगो की नजरें इस दृश्य म हो रही रसवर्षा मे जमी थी। उसे शायद कुछ साहस मिला, सरकारी कुत्तो को मैं लाइन पर लाना जानता हू।'

मैं क्रोध से चिल्ला सा उठा, 'दोबारा गाली दी तो जुबान खीच लूगा।"

शायद हाथापाई ही कर बैठता पर साथ चल रहे दो साथियो न हस्तक्षेप कर स्थिति को अधिक बिगडने से बचा लिया था।

उस घटना का स्मरण आते ही ग्लानि का एक स्रोत भीतर फूट पडा। तब तक निर्दोषी बातचीत का स्टीयरिंग घुमा चुके थे, 'पिछली बातें भूल जाइए, पंडित जी !"

फिर भी, चन्दन ने अपनी लाल लाल, हिंसक सी आखें मेरी ओर कुछ इस प्रकार फेंकी ज्यो कोई भूखा बाघ मेमने को देख रहा हो।

प्रात के सन्नाटे मे खोयी सडक पर इक्का दुक्का वाहनो की घरघराहट चेतनता

द्वारा अगडाई लन का आभास देने लगी थी।

रात की महफिल म मेरा लगभग साढे तीन सौ उठा था। निर्दोपी, च दन, पचायत के प्रधान साहव, उनके उप प्रधान तथा कुछ अ य गणमा य सज्जत जो इन सज्जनो क नजदीक समझे जात थे, उस महफिल म शोभायमान थे।

हर दौर के साथ बहस का विपय बदलता रहा था। बहुत से लोगो की बुराई की परतें आश्चयजनक ढग से खुली थी। झील के पानी मे जैसे ककर पडते रहे थे लगातार।

डेढ घण्टे के अ तराल के बाद निर्दोपी ने मुख्य विपय का स्मरण दिलाया था, 'यह पार्टी भार्गव की तरफ से है।"

"ठीक है, ठीक है' की मुद्रा मे प्रधान साहब न निर्दोपी की ओर दृष्टि फेंकी।

"इसका ट्रासफर कि नोर हो गया है," उसने दूसरा तीर दागा।

वहुत-सी आखें निर्दोपी के चेहरे स फिसलती हुई मरी ओर लपकी मानो कह रही हो, 'हो गया न !" या शायद "हो गया है तो होना ही था। क्या करें ?"

फिर जाम उठ गए।

चेहरे पर उभरी कडवाहट का मिटाते हुए निर्दोपी ने पुन स्मरण करवाया, "इस वक्त यह ट्रासफर इसे परेशान कर रहा है।"

प्रधान अब तनिक हसा। एक व्यग्यात्मक हसी !

"गद्दारी की सजा तो मिलती ही है," कहती बार च दन का कटा हुआ हाथ ऊपर उठा था।

मेरे भीतर क्रोध की ज्वाला पूरे आवेग से उठी, "कसी गद्दारी ?"

'रस्सी जल गई पर एठ न गई' के लहजे मे च दन गरजा, "काग्रेस से गद्दारी की सजा ! यह गलत हो रहा है, वह गलत "

मैं तक करने लगा, "नीतियो के सिवा मैं कभी किसी अ य बात पर टिप्पणी नही करता।"

तब प्रधान न निणयात्मक स्वर मे कहा, "आपके बार मे सोचेंगे।"

यानी साढे तीन सौ सिफ सोचने भर के लिए उठ गया। चित्त हुआ सभी का मुह नोच लू। पर निर्दोपी ने हाथ दबा दिया, "आप चुप रहिए।"

और महफिल विसर्जित हुई।

निर्दोपी को विश्वास था कि मुझसे रूठे हुए नेताओ को मना लेने मे वह कामयाब हो जाएगा। पर मुझे जरा धैय से काम लेना होगा। किसी की कडी से कडी बात पर भी प्रतिक्रिया नही व्यक्त करनी होगी। सिफ सुनना और सहन करते जाना होगा। तभी नेताओ का हृदय परिवतन होगा और कुछ बात बनेगी।

पीने पिलाने का कायक्रम सप्ताह भर तक चलता रहा। मैं किसी मौन साधक की तरह प्राय बिलकुल चुप हा गया।

यकायक उसने मुझसे निगाहें चुराना शुरू कर दिया। अब जितना ही मैं निर्दोषी के पास जाने की कोशिश करता उतना ही वह चिकने फश पर घिसटती गेंद की तरह मुझसे दूर सरक जाता।

चित्त की अशाति मे उसके प्रति गहरा आक्रोश उमड पडता था पर जरा गहराई से सोचने पर उसकी विवशता पर तरस आने लगता था। वास्तव म, स्थानीय नेताओ का उसे स्पष्ट निर्देश हा गया था कि भागव के मामले म वह हस्तक्षेप न करे।

मुझे स्मरण नही कि कभी मैंने किसी की राजनतिक खिलाफत की हो। अल बत्ता सरकार की हर नीति पर मेरा एक स्वतत्र मत जरूर है जिसे व्यक्त करने मे मुझ कभी कोई सकोच नही रहा। अलबता, किसी भी छोटे या बडे राजनीतिज्ञ का सक्रिय समथक मैं कभी नही रहा। पर सजा पाने के लिए तो शायद चन्दन वाली घटना ही काफी थी।

उस दिन स्कूल म ही मैंने जबरन निर्दोषी को घेरकर पूछ लिया, "अब मेरे ट्रासफर का क्या होगा ?"

इन दिनो मैं स्वय को गहरी खामोशी के वातावरण मे पडा हुआ पा रहा था। मुझे लगने लगा था कि हैडमास्टर समत सभी अध्यापक मुझ अछूत मानने लगे हैं। मुझसे बात कर लेना भी जैसे गुनाह हो। हैडमास्टर ने तो मुझे जल्दी ही रिलीव होने के लिए भी कह डाला था। निर्दोषी से बात करना अपरिहाय हो गया था।

उसने जमीन की तरफ निगाहे गडाए उत्तर दिया, "सारी मि० भागव! मेरे बूते से अब यह बाहर हो गया है। कोशिश तो मैंने पूरी की।"

'तो मुझे किनौर जाना ही पडेगा ?"

"नही," उसने साहस बटोर कर उत्तर दिया, "एक रास्ता बचा है अभी।"

"उसे भी बता दीजिए!"

'आप शिमला मे सागर साहिब से मिल लीजिए," वह आर-पार हिरण की सी निगाहो से ताकते हुए फुसफुसाया, "हो सके तो माफी वगैरा माग लीजिए, शायद बात बन जाए।"

"माफी कैसी ?"

"यही तो आप नही समझते," उसने धीरे से कहा, 'अपने लिए गधे को भी मामा बोलना पडता है।"

मैं चुप रहा।

"आप शिमला हो ही आइए, सौ दो सौ की ही तो बात है।"

उसकी बात गलत नही थी। हजार बारह सौ लगा चुकने के बाद सौ दो सौ की कजूसी करना मुझे भी अब खलने लगा था।

अगली ही प्रात , मैं शिमला के लिए रवाना हो गया।

सागर साहब से मिलना जरूरी था। वे न केवल इस इलाके के विधायक थे अपितु प्रातीय सरकार के माल मन्त्री भी थे।

खचाखच भरी बस म मेरा दिमाग मकडी के जाल म छटपटाते कीडे सा उलझा हुआ था।

क्या बना देता है वक्त आदमी को। अपनी तनिक सी बेहतरी के लिए अपना कद कितना बौना करना पडता है। गलत को ठीक कहने का दुस्साहस जुटाना या कम से कम गलत को गलत न कहने की प्रवृत्ति को आदत बना लेना। कल तक बुरी समझी जाने वाली हर चीज़ को आज गले लगा लेना। यही चेहरा है आज की राजनीति का ! न कोई दुश्मन, न दोस्त कल तक यही सागर साहब विपक्ष मे थे तो विधान सभा के भीतर व बाहर गला फाड-फाडकर सरकार के विरुद्ध चिल्लाते थे। एक रात इनके लिए व्यक्तिगत सुखो का उजाला लेकर अवतरित हुई जिसमे इनकी पगडी का रग अचानक बदल गया। प्रात वे मन्त्री थे।

सच कितना कसैला हो जाता है जीभ का स्वाद कभी कभी, जीवन आवेग के विरुद्ध दौडते दौडते ! जो कुछ नही सोचते या अपनी सोच को जिन्होने गिरवी रख लिया है, उन्हे जीवन के दैहिक या भौतिक ताप कभी नही सताते। एक की सोच गिरवी रह जाने से दूसरे की सत्ता का मार्ग प्रशस्त होता है। अपने व्यक्तिगत सुख के लिए अपनी अस्मिता को गिरवी रख देना शायद कोई बहुत बडा मूल्य नहीं है। इसम तथाकथित नैतिकता का भूत प्रवेश ही क्यो पाए !

कितने सुख से जी रहे हैं हैडमास्टर, निर्दोषी व अन्य सहयोगी। वे मन्त्री जी को समय समय पर सलाम दे आते हैं। प्रधान, उप प्रधान व चन्दन आदि को यथासमय पिलाते रहते हैं। यही सुख का मार्ग है और यह सत्ता के गलियारो से प्रशस्त होता है।

मैं कहा हू आज।

मानो अपने अक्ष से भटकी हुई कोई उल्का हो। कोई सहानुभूति की दृष्टि मेरे साथ नही है। लोग मुझे उपहास का पात्र समझते हैं। रेगिस्तान मे पानी का झरना ढूढ रहा हू।

प्रश्नों के बोझ से दिमाग मे एक बार तो तूफान आ गया। वापस लौट चलू ?

पर नही ! एक बार भाग्य आजमा ही लेना चाहिए। शायद बात बन जाए।

शिमला की ठडी हवाओ मे झूमते रगीन, बेफिक्र जाडे भी मेरा मन न मोह सके। पैदल यात्रा के लिए बनी वहा की शीतल सडकें खुरदरी लगने लगी थी। लगता था चारो ओर फफूद उगी हुई है। पणहरिम स रहित सफेद काई ! मेरी आखें किसी अनचाहे-अनजाने दद मे डूब रही थी।

सागर साहब की कोठी के लॉन म भारी भीड मडरा रही थी। माना बहुत सी प्रेतात्माए धमराज क दरबार के बाहर अपनी बारी की प्रतीक्षा म टहल रही हो।

एक लम्बे इतजार के बाद इस भीड म एक चेहरा जाना पहचाना सा लगा। दिमाग पर जार डाला—अरे ! यह तो अपना जगमोहन है।

कभी मेरा विद्यार्थी रह चुका जगमोहन। मैं उसकी ओर लपका।

'जगमोहन !''

उसकी बोझिल गदन मेरी ओर विवशता म घूमी। वह तनिक-सा चौंका, फिर बेपरवाही स मुझे देखने लगा।

'जगमोहन !'' मैंने उसे आश्वस्त करना चाहा, ''तुमने मुझे पहचाना नही, मैं भागव हू रामकृष्ण भागव !''

पहचान लिया।' उसने खुरदर से स्वर मे उत्तर दिया, 'कहो, कसे आना हुआ ?''

मैंने अपनी करुण कथा उसे सुनाना शुरू कर दी शायद उसके भीतर सवेदना जागृत करने के लिए।

पर आपके खिलाफ तो सैकडो शिकायतें हैं,'' उसने पूरी बात सुन बिना मुझे टोक दिया, ''उनके इलाके म रहकर आप उ ही का विरोध करते हैं। उनके वकरा से झगडते हैं।

मेरी नसा म मानो सहसा बफ भर दी गयी हो। तालू से चिपकी जीभ को मुश्किल से छुडाते हुए मैंने उस पूछा, 'आप क्या करते हैं आजकल ?'

'इतने नादान हो' की शली म हसते हुए उसने उत्तर दिया, 'सागर सा'ब का गनमैन हू।'

मुझे लगा, एसा कहते हुए उसकी गदन ऐंठ गयी थी।

वह सरक गया और मरी दृष्टि क्यारी म उगे पीले गुलाब पर जम गयी।

अपने युग मे जगमोहन अपनी कक्षा का सबसे मदबुद्धि विद्यार्थी था। उसके भेजे मे कभी कोई प्रश्न घुसा हो, मुझे याद नही। माच महीने म परिणाम घोषित होन की अतिम रात्रि तक उसकी सिफारिशें मुख्याध्यापक के पास आती रहती थीं। उसका बाप अपने गाव का पच था और सागर सा'ब का खास एजेंट ! बोड की मैट्रिक परीक्षा म उसके लिए नकल की पर्चिया तैयार करने के लिए कुछ योग्य किस्म के अध्यापको को तैनात किया गया था वह उत्तीण हुआ था।

पीले गुलाब की पखुडिया झडकर जमीन पर गिरने लगी थी। मैंने उन्हे उठाने के लिए हाथ बढाया तो सामने साइनबोड पर दृष्टि जम गयी, 'फूल तोडना मना है।"

तब कोठी के द्वार से एक भीड निकली। खादी म लिपटे सागर सा'ब सबसे आगे थे। उनके हर कदम पर खडा आदमी उस भीड का हिस्सा हो रहा था।

उनकी दृष्टि मेरी आर उठते ही, बिना विलम्ब मैंने हाथ जोडकर 'नमस्त जी" कह दिया।

उन्ह मानो किसी स्मृति ने झझाडा हो। कदम जरा ठिठक गए—"कैसे आए आप ?"

मेरा हृदय तेजी से उछल रहा था। क्षण भर को तो लगा कि यह छलाग मार कर फेफडे म घुस जाएगा।

थरथराती वाणी से मैंने कहना शुरू किया, "सर! मेरा ट्रासफर इटीरियर मे "

"बस! इत्ती सी बात!" उन्होने झटके से उत्तर दिया, "पाच वर्षों तक तो आप कहा गुलछर्रे उडा रह थे।"

बात गलत नही थी। पाच वष हो गए थे मुझे मटौर म नौकरी करत, पर निर्दोषी को नौ चौधरी को ग्यारह, बालमराम को तेरह और बाकी सभी को पाच से अधिक वष भी हो गए थे।

तब तक उनके तेज कदमो के पीछे भीड की घुटी सासें चलने लगी थी।

मुझे लगा लॉन मे खडे मेरी स्मति खो गयी है। अधेरी खोह मे भटकते पथिक की भाति आखे अधकार म डूब रही है।

वे बुरी तरह दद की बोझिलता से तडप रही है।

"आ गयी तसल्ली, मास्साब ?'

इस ध्वनि ने मेरी चेतना को वापस लौटाया। जगमोहन था। वह मुस्करा रहा था। जैसे वह दाव जीतकर मेरी हार पर व्यग्य की चासनी फेर रहा हो।

' उसके यह शब्द भाले की तरह मेरे कलेजे मे उतर गए।

अनायास कदम सडक की ओर दृढता से बढने लग। लगा चारो ओर उगी काई क्षण भर म सूखकर राख हो गयी है। आखो का दद मिट गया है।

किन्नौर तो क्या अब मेरा तबादला काले पानी हो जाए तो भी जाने से न रुकूगा।

पहरा

भरी बरसात म साध के ठीकर की जोत अनवरत दस दिन जलाए रखना मगतू के लिए कठिन दीख रहा था। आधी तूफान और छप्पर के सडे खपरैल दानवो की तरह मुह बाए, उसे पराजित करन के लिए आतुर थे। जोत कही बुझ गयी ता परलोक के रास्ते पर अग्रसर साध का अधेरा म भटकने का भय था। इसलिए ठीकरे ने जलत रहना था और मगतू उनींद का कवच धारण कर इसकी सुरक्षा के मोर्चे पर डट गया।

पर शीघ्र ही उसे भान हा गया कि कवच धारण कर लेना भी सुरक्षा की कोई गारटी नही है। टपकत छत से आती एक छोटी-सी बूद न दीया बुझा दिया। मगतू ने उस जलाने मे क्षण भर की देरी नही की पर व्यवधान आ जान से वह सिहर उठा। प्रातःकाल उसने पुरोहित से इसका निराकरण करवा लिया। पिंड दान की मात्रा बढ गयी।

बिरादरी को बडी चि ता हुई। टपकत पानी को रोकने क उपायो पर विचार हुआ पर लम्बी बहस अनिर्णीत रही।

छत टपकता रहा और दीया जलता रहा।

रत्नो को सारा गाव कोस रहा था। तीन दिन पहल माग सूनी हुई है और वह ठीकरे का ध्यान छोड सा रही ! विधवाओ ने अपने दिन याद किए। वे तो दस दिन दस क्या महीने भर उनींद रही थीं। न कुछ खाया, न पीया ! न नहाया न धोया ! कितना बदल गया जमाना अब ! तीसरी ही रात मे सो गयी, नासमझ ! बहुओ ने अपना भाग्य सराहा ! शुक्र है उनके शौहर तो जिंदा हैं।

मगतू खुद पर झीगता। नये खपरैल भी न डलवा सका साल भर से। बुढी जिदा थी तो हर साल छ महीन बाद खपरल डलवा लेती थी। चाहे जो भी जुगाड फिट करना पडता उसे। बरसात को क्या दोष दे। इसका तो समय है। अपने समय पर आई, अपने समय पर चली जाएगी। पर क्या मालूम था कि भरी बरसात मे साध ईश्वर का प्यारा हो जाएगा। उसने जवान बेटे को क्यों उठाया। टैम तो बूढे का था। पता नही क्या मजूर है उसे। अभी लडका पाच

महीने पहले तो दूल्हा बना था। बहू के हाथ की पकी-पकाई दो जून की रोटी मिलने लगी थी।

पंडित जी दिन में शिव पुराण और रात को नासिकेत पुराण की कथा बाचते हैं। कथा श्रवण से उपलब्ध पुण्य बटोरने सारा गांव उमड़ पड़ता है। बच्चे, जवान स्त्रियां, पुरुष, बूढ़े सभी। पर ठीकरा के पहरे में कोई नहीं बैठता। टपकते पानी में कोई रात काटे तो कैसे। सब लौट जाते हैं, अपने अपने घर और मगतू को अकेले काटनी होती है लम्बी रात। बहू की उमर ही क्या है जो उसे कहे तू रात-भर जाग ले। कम अभागी है जो भरी जवानी में विधवा हो गई। हाथ की महंदी का रंग भी तो न उड़ा था।

गीदड़ों की हुकारें निकट आ गयी तो मगतू ने जान लिया कि रात का आधा पहर बीत गया। संसार गहरी नींद सो रहा है। दिन से ही बारिश हो रही थी। बहू को बैठे-बैठे नींद के हिलोरे आने लगे थे। वह धीरे से बोला, "बहू, तू सो जा। बाकी की रात मैं काट लूंगा।"

वह जैसे यही सुनने के इंतजार में थी। गीली मिट्टी में फर्श पर पसर गयी, "बापू! जरा ठहर कर मुझे उठा देना, फिर आप पल भर आंख झपका लेना।' पर मगतू जानता था निगोडी नींद अपना समय पूरा करेगी ही। मौत और नींद से कोई कैसे बचे। यह भी कोई अपने हाथों की बात है। फिर भला साध को वह मरने ही क्यों देता!

मुर्गे की पहली बांग और मंदिर की शंखध्वनि लगभग इकट्ठी हुई थी। रत्ना हड़बड़ाकर उठ बैठी, "अब आप कमर सीधी कर लो बापू।"

स्नेहिल नेत्रों से मगतू ने इस अबोध बालिका को देखा। बावरी है, भला बुड्ढों को भी नींद होती है। जीवन सोकर ही तो काटा है। अब चंद रातें जागते कट जाएं तो क्या फर्क पड़ता है।

कमरे में सन्नाटा गहरा गया। मरियल-सी लौ थी ठीकरे के दीपक की। मगतू ने उलझी मूछों पर हाथ फेरा। सिर पर धरे गमछे को कमर के गिर्द लपेटा और दीवार से टेर लगा दी। उसकी कमर का दर्द बता रहा था अब वह बुढ़ापे के जाल में फंस गया है नहीं तो 'गहाल' पर कई कई रातें गप्पें हांकते कट जाती थी। मजाल जो कभी दर्द महसूसा हो। हां, बड्डी के मरने पर ऐसा ही कुछ दर्द जरूर जागा था!

गांव में चर्चा का विषय मिल गया।

'दिल्ली आ रा प्रोफेसर आई रा इक मेम भी है साथ।" मेम साड़ी बांधती हैं। पेट और बाजू बिल्कुल नंगे हैं। सिर पर पल्लू नहीं है। किसी बड़े-बूढ़े की

शम नही मानती । मगतू की भी नही । शहर की है गाव क रिवाज क्या जाने । नाक तो हर घडी चढी हुई रहती है ।

बिरजू ने उसके लिए पालकी का इतजाम कर घर पहुचाया । पैदल चलना तो जानती ही नही । जब भी चलती है तो बिरजू की बाह पकडकर दैया दैया कैसी बसरमी है । मद का बाजू सरेआम पकडकर चलना गम्भो तो कह रही थी बिरज से आगे भी चलती है । दोनो इकट्ठे बैठकर एक ही थाली मे खात हैं । जूठे बतन बिरजू उठाता है । कहत है साफ भी करता है ।

स्त्रिया बच्चे, सभी छिपते छिपते उन्ह देखने की कोशिश मे रहत हैं । बहुतो ने देखा बिरजू चम्मच से खुद खाता है फिर मेम को उसी चम्मच से खिलाकर, दोनो हस पडते हैं । रत्नो घूघट काढे खडी थी वहा मर गया मगतू सामने बैठकर यह सब देखना बाकी था, इसीलिए जी रहा था । लडका कम पढा लिखा होता तो वही नजदीक क्लर्की करता । किसी अच्छे वश की बहू लाकर घर बार, जगह जमीन सभालती । आज बड्डी जिन्दा होती तो देखती, अपनी आखो से क्या घट रहा है उसके घर मे बडी इठलाती थी "उसका बिरजू प्रोफेसर हो गया अब सब अपन कलेजा को ठडा करो ।' प्रोफेसर क्या हुआ धोबी का कुत्ता हो गया । घर का न घाट का ! सुना है मेम दिल्ली म मास्टरनी है । नौकरी करने जाती है । मर्दो के बराबर कुर्सी पर बैठती है तो शम हया कहा होगी भाई ! ऊई ! पेट तो नगारे जैसा है पर है बिल्कुल गोरी चिट्टी । देखन म बहुत सुदर है । जैसे दूध से नहाई हो वहा कौन से खेत मे काम करती है, जो रग काला हो जाएगा । टोना टोटका भी जानती होगी । बिरजू के सिर म जरूर कुछ डाल दिया होगा । तभी तो उसके वश म हो गया है । मद ही नही रहा ।

परसो शाम को दोनो रीहडी की तरफ चले गए थ । भैस की तरह हाफती मेम ढलान चढ तो गयी पर उतरती बार टागें थरथरान लगी उसकी । जो बैठ गयी तो फिर बिरजू को पीठ पर उठाकर लाना पडा निगोडी को ।

बहुए सोचती, उनका भी क्या जीना है । दिन भर गधे की तरह बोझ ढोना, सास ससुर की गाली गलौच सुनना और मद के दो बोल सुनन क बजाए उसकी लात-मुक्की के लिए तैयार रहना । बस पिछले ही साल प्रेम की अम्मा ने बहू की जुबान गम चिमटे से खीच ली थी । कोई नयी नवेली सास के सामने खसम स हसकर तो बोले भला ! कौन झेलता है इतनी बेशर्मी । आख का पानी मरतो नही गया है, प्रेम की अम्मा तो आज भी कहती है बिरजू बडा होगा दिल्ली म । वे अपने रीति रिवाज क्या छोड दें । बहा ले आया मेम की जात । गाव की बहुओ को अब नखरे सिखाएगा ! पर वे क्यो पैर की जूती का सिर पर उठा लें । यह हुक्म बिल्कुल न चलेगा गाव म । मगतू के घर जो हो । आज बड्डी जिन्दा होती तो घर म न बढन देती बिरजू का । मगतू तो मुआ बैल है । धम क्या जान ।

पता नहीमेम की जात क्या है । चमारिया लुहारिया कौन से कम टास मास करती हैं। ब्राह्मण की जात है, उन्हें कौन घर मे घुसने दे। विवाह ही न होता होगा निगोडी का, फास लिया बिरजू को ।

मगतू को आशा हो गयी कि बिरजू के आ जाने से छत नही टपकेगी ।

मेम बहू ने घर मे जो कदम रखा तो जैसे इन्द्र दवता रूठ ही गए । भादो मे लू चलने लगी। खपरैल बदलने का ख्याल रहा भी तो केवल मगतू के दिल म। जुबान पर न आया। दीया भभकन लगा । तेल की खपत बढ गयी और देखत हो नौ दिन बीत गए।

दसवा दिन जात बिरादरी की पातक से मुक्ति का दिन था। पर लम्बे इन्तजार के बाद भी बिरादरी नही आयी। घर मे मेम ससुर के सामने खाट पर पसर जाती है। कोई कैसे आए। ओछी जात होने का भय ऊपर से। मगतू हाथ जोडकर बारी-बारी सब द्वारो पर गया। पर स्त्रियो क सिवा कोई घर पर न मिला। कोई खेत म था, कोई हाट-दुकान गया था। किसी की तबीयत खराब थी, बिस्तर कैसे छोडता। सब टाल गए।

हा, उपरली ताई ने खरी खोटी सुना दी, "मगतू ! तू मद की जात नही। तेरे कहने मे तो लडके भी नही हैं। भादर न जुलाही घर बिठा ली तो वही बिरादरी पर टूट पडी थी। फिर भी भादर ने जब घर छोड दिया तो हम बड्डो के मरण पर तेरे घर आ गए। साध के ब्याह पर भी आ गए थे। अब बिरजू पता नही किस जाति की मम घर ले आया हम अपना धम भ्रष्ट क्यो करें। नही आ सकते तेरे घर।"

मगतू निर्वाक रह गया।

बिरजू की देवी सी बहू पर लाछन। अब तो बेचारी उस जैसी ठूठ, अनपढ, गवार की कितनी इज्जत करती है पढी-लिखी होकर भी। ताई को आश्वस्त करने लगा, "ताई, मैंने बिरजू से आते ही पूछ लिया था। शुद्ध बिराहमनी है। नही क्या मैं उसे घर के अन्दर आने देता। भादर की बात छोडो। वह तो औरत को लेकर परदेश म है। तुम सब लोग चलो। बिना बिरादरी धम कम म कहा गति मिलेगी ।"

मगतू झूठ नही बोलता। बिरादरी उसकी जुबान का विश्वास मानती है।

पातक से शुद्धि चल रही थी। बिरादरी शुद्ध होने आ पहुची थी, पर तभी भादर आ पहुचा। नीमो बच्चा उठाए उसके पीछे पीछे चल रही थी। गम तेल की कडाही म जैसे पानी का गिलास उडेल दिया गया हो। ताई की आवाज 'कडें एँ एँ' की तरह चीखी थी, मगतू ! तेरे कहने पर हम आ गए थे। अब भादर और नीमो को अन्दर आने दिया तो कोई बच्चा भी यहा न टिकेगा। फसला कर ले जल्दी।"

मगतू की आखें पथरा गयी।

दिल उछलकर बेटे को आगोश मे भरने के लिए आतुर था। पोत का चुम्बन लेकर नाच पडना चाहता था, पर बिरादरी का विज। हाय ! वह क्या करे ! ऐसे मौको पर बुड्ढी की बुद्धि एकदम काम करती थी। वह तो बौखला जाता है।

वह असमजस मे ही था कि बिरजू भभक उठा, 'क्यो न आए भादर अपने घर ? उसका भाई मर गया है और उसे अन्दर आने की इजाजत भी नही है। वाह ! ऐसी क्या बात है "

पल भर को सन्नाटा छा गया।

तेज तर्रार ताई की जीभ तालू से नहीं छूटी पर अबकी हीरा चाचा की मरियल आवाज आने लगी, ' वह आए। भाई ! उसका घर है। हमारा उस पर क्या वश ? पर वह अन्दर और हम बाहर ! जुलाही के घर हम न आएगे, क्या जोर-जबर है किसी का।"

सब उठकर चल दिए।

भादर और बिरजू आपस मे लिपट कर रोने लगे। नीमो चीखने लगी। मगतू ने अपनी आखो मे उमडते सैलाब पर कठिनाई से काबू पा लिया पर उसका गला सूज गया। लगा यह फट पडेगा और खून की धारा बह निकलेगी। अनीता भरी आखो से देख रही थी। इतना निश्छल प्रेम । सबके अन्तर म एक शून्य था जो तूफान बनकर आंसुओ की धारा के रूप म निरंतर बह रहा था।

मगतू के गले मे दद हो रहा था। आखो की नमी पर पूरा काबू वह भी न पा सका।

रात दर तक दोनो भाई बातें करते रहे। बचपन की स्मृतियो मे डूबे हुए एक अदश्य चलचित्र दोनो को ही आधी रात तक दीखता रहा। अनीता और नीमो खुराट भर रही थी। कमर के एक कोने मे दुबका मगतू सोन का स्वाग कर रहा था। पुत्रो की आत्मीयता के सागर मे कितनी ही दर हिलोरे लेता रहा। जाने कब उन्हे नीद आ गयी और वह अतीत की पगडडियो पर लौट चला।

बापू की याद है उसे।

दस बरस का था। बापू मजे पर सोया सोया चिल्लाता रहता था। 'हाय अम्मा' हाय बाबा' हाय 'हाय । *मगतू को नीद आ जाती थी। कभी ताई* मकई की रोटी का एकाध टुकडा उसे दे जाती तो खा लेता, नही कच्चे चावलो की मुट्ठी दो मुट्ठी फांक कर सो रहता। बापू तो कुछ नही खाता था।

एक सुबह वह जागा तो बापू चुपचाप सोया था। उसने समझा बापू ठीक हो गया। बापू ! बापू ! पुकारा पर बापू आंखें खुली होने पर भी कुछ न बोला। आखें झपकना भी उसने बन्द कर दिया था। वह फिर पुकारने लगा, 'बापू ! बापू !"

तभी हीरा चाचा कहीं से आ टपका। उसने गौर से बापू को देखा और उसकी बाह पकड़ी। फिर मगनू की तरफ देखकर बोला, "ऊचे ऊचे रो ब मरदूद! मर गया तेरा बापू तुझे रोता सुनेंगे तो गाव वाले आ जाएंगे। श्मशान पर 'दाग' दे के जाना पड़ेगा। जल्दी कर, बाहर जाकर जोर से रोना शुरू कर।"

मगनू हतप्रभ कभी बापू की खुली आखो को देखता तो कभी हीरा चाचा को "अबे! देखता क्या है पुकारना शुरू कर।" और इस बार बच्चे के मुह से एक लम्बी चीख निकल गयी "बा पू!"

फिर वह लगातार रोता ही रहा।

श्मशान से लौटा तो घर सूना था। लोगो के घर मे उनकी अम्माएं हैं। उसके वह भी नही। बापू बोलता था सुरग को गयी है। कही बापू भी सुरग को न चला गया हो तो अब उसे इस घर मे अकेले रहना पड़ेगा। कहते हैं सुरग से वापस कोई नही लौटता। तो अब उसे इस घर मे अकेला रहना पड़ेगा। वह फूट फूट कर रोने लगा। लोगो ने उसके बापू को जला दिया। अब प्यार से उसे कौन चुप कराएगा।

फिर एक लम्बी राम-कहानी शुरू हुई। कभी किसी घर की देहरी पर धक्के खाए तो कभी किसी चौखट पर नाक रगड़ी। यहा वहा टुकड़े खाकर पलता रहा। सब गालियां ही देते थे। जनमते ही अम्मा को खा गया। दस बरस मे बापू को भी। उसकी समझ मे तो नही आता कैसे खाए उसने अम्मा और बापू। वह तो चाहता है उसके घर मे भी अम्मा-बापू हो, पर वे तो उसे छोड़कर सुरग को चले गए। उस सुरग का रास्ता मालूम होता तो घड़ी भर यहा न रहता। लोगो की दया पर जीना बड़ा मुश्किल है। लोग बड़े खराब हैं। उससे काम करवाते हैं। डगर चरवाते हैं, गोबर उठवाते है। पर पेट भर खाने को नही देते। कहते हैं उसके पेट मे कीड़ा है। तभी तो उसका पेट नही भरता। भला कीड़ा पेट मे होता तो वह उसे ही न खा लेता। उसकी तो भूख ही खत्म नही होती और ये लोग गालियां देते नही अघाते। डाट-फटकारते है। क्या ताई क्या हीरा चाचा, तो क्या झमकू ताऊ! सब के सब उसे ऐसे देखते हैं जैसे वह आदमी ही न हो। बापू ने तो उसे कभी गाली ही न दी थी, चाहे वह जितना मर्जी खा लेता। उसने तो कभी नही कहा पेट मे कीड़ा है। झूठ बोलते हैं। शायद उसे डराते हैं ताकि वह ज्यादा न खा ले।

हीरा चाचा 'महाल' का जा रहा था। सुना है 'महाल' मे ठेकेदार रोटी तो पेट भर कर देता है। और दो टैम गरम चाय भी पिलाता है। लकड़ी के स्लीपर पानी मे गिराने है और उन्हें देखते, नदी के साथ साथ आगे चलना है बस! कहते हैं ठेकेदार के पास रुपए के बड़े बड़े सदूक भरे पड़े हैं। कोई काम करे, न करे, पैसा सबको बराबर मिलता है। छोटे बड़े का कोई फर्क नही है। ठेकेदार किसी को गाली तो कभी देता ही नहीं।

सहमते हुए उसने चाचा से कह दिया। यू तो वह डाट डपट के लिए तैयार

था पर उलटा हुआ। चाचा उस ठेकेदार के पास ले गया। फिर 'गहाल' का जो चक्र चला तो हर वर्ष जाने लगा। काम चाहे कठिन था पर पेट खाली नही रहता था। पैसे भी नही मिलत थे। गाली भी न सुननी पडती थी। परदस म बापू की याद भूल गयी। नदी किनारे भाग खूब मिलती थी। रात को महफिलो मे रग जमने लगा। दिन की थकान यू मिटती जसे कुछ किया ही न हो।

सतलुज नदी बडी प्यारी लगती थी। अथाह पानी का बोझ समेटे पहाडी चट्टानो को काटती-फादती दौडती जाती थी—अबाध, निरतर। कितनी ठडक पहुचती थी दिल को, उसके पानी को छूते ही।

मगतू ने एक लम्बी जमुहाइ ली।

घर बार जगह जमीन देखकर लालाराम ने अपनी लडकी उसे द दी थी। घर बस गया था। बिरादरी तो तब भी नाराज हुई थी कि भारद्वाज गोत्री ऊचे ब्राह्मण होकर छोटी जात के कनैत की लडकी ब्याह कर बिरादरी की नाक कटवा दी। पर वह मन ही मन खुश था। चलो ब्याह तो हुआ। बड्डी सब भाइ बहना म सबसे बडी थी। काम काज, बोल चाल म तेज तरार! चिडिया की तरह उसने घोसला सहेज लिया। इतना कि बिरादर लोग खार खाने लगे। थी बडी जानदार औरत। भूखी सो गयी नगे बदन ठिठुर ली, पर किसी के आग हाथ न फैलाया। उमर कट गई इस झोपडे म। दादा परदादा की इस विरासत म परिवार खूब फला फूला। बिरजू पैदा हुआ तो उसका मुह दखकर छाती गज भर की हो जाती थी। फिर बारी बारी से भादर, बसता साध!

मन बसता पर अटक गया। कहा होगा बेचारा! कैसे बिछुड गया सारा परिवार। जिगर के टुकडे टुकडे हो गए। बड्डी ही न रही। जवान साध साथ छोड गया। बिरजू और भादर तो चलो अच्छे हैं। जहा कही रहत हैं, सुखी रह। ब्याह शादियो वाले ह, पर बसता जान कहा खो गया दुनिया की भीड म। मूख निकला। एसे भागने की जरूरत क्या थी। गलती तो आदमी हजार बार करता है। जग की शम आदमी को नही मारती पर अपनी शम स गड जाता है आदमी।

भादर ने नीमा को घर बिठा लिया।

अधेरा होने पर बड्डी और मगतू खेत से लौटे तो आगन म सिसकने की आवाज सुनाई देने लगी थी।

'कौन है भीतर, र?' कुछ उत्तर न पाकर बड्डी भीतर गई तो कमरे का अधेरा जस खुद सिमट रहा था, 'कौन है, र! बसता, साध कहा हो तुम सब?''

तभी किसी कोने से भादर की आवाज आई, 'अम्मा! नीमा है।''

बड्डी की आखें अंधेरे मे फैल गयी, "नीमो ?" मगतू जुलाहे की जाई। पर हमारे घर क्यो घुसी है ?

बड्डी जानती थी भादर और नीमो के चर्चे कुछ दिनो से फैल रहे थे। पर अपनी जिज्ञासा स्वय उसकी समझ से बाहर थी नीमो उसके घर कही बैठ तो नही गयी ?

भादर शायद उसे बिठाकर भागना चाहता था, पर उसने जा टाग पकडी ता भादर का पुरुषत्व भी हार गया। उसकी झल्लाती आवाज ने स्थिति स्पष्ट कर दी, "अब ता टाग छोड द अम्मा को कुछ बताऊ !"

तब तक बड्डी समझ चुकी थी। भादर उसके करीब आकर चिरौरी करने लगा, "अम्मा, नीमा का पैर भारी है, अब उसका कौन है भला, मरी अच्छी अम्मा, तू उस अब घर से तो न निकालेगी न !" बड्डी लडके को नासमझ समझे थी पर वह तो सयाता निकला। पैर भारी का अथ भी समझता है। जुलाही उसके घर को अपवित्र कर, वह कैसे गवारा करती। कुडकुडाने लगी "तुझे जुलाही ही रही र ! सारा ससार मर गया क्या ?"

भादर ने उसका मुह हाथ स ब द कर दिया, "अम्मा ! अब यह तरी बहू है, नही साच ले मैं तर लिए मर गया इसको लेकर परदेश चला जाऊगा।"

बफ की सिल क्षण भर मे पिघल गयी, "नही रे नही ! बिरजू दस जमातें पढ कर जा परदश गया ता लौटकर न आया। अब तुझे क्यो भटकाऊ। तरी दिल्लगी है ता मेरी बहू हा गयी। तू यहा आराम स रह, तेरा घर है कुण निकाली सका निजो करा ते दानो रहो।' भादर अम्मा स लिपट गया, ' मेरी अच्छी अम्मा। तभी दरवाजे पर खडे मगतू ने शका व्यक्त की—"बिरादरी बिज डालेगी पागला ! अच्छूत कर देगे ! कैसे रहाग गाव म ?"

बड्डी का ममत्व फडक उठा, 'बिरादरी बिरादरी ! बिरादरी दती है हम राटी, खुद कमाएगे तो खाएग। बिरादरी जाए भाड मे। जिसन जाना हा जाए। मैं क्यो अपन बहू-बेट का देश निकाला दे दू हू !"

मगतू निरुत्तर !

ठाक हा तो कहती ह बड्डी। अपन जिगर का टुकडा बाहर फेंक दे ?

प्रात सारे गाव म जगल की आग की तरह खबर फैल गयी कि भादर ने नीमो को रख लिया। सबके दाता तले उगली दब गयी।

बिरादरी की चौधर बैठी।

मगतू की जवाब-तलबी हुई कि उसके बेटे ने क्यो जुलाही घर बैठा रखी है ?

मगतू शून्य आखो से दखता रहा।

"जवाब द मगतू " झमकू ताऊ न चकसाया कि बड्डी बरस पडी, ' क्या जवाब

मागते हो ?" नीमो क्या आदमी की जात नही है ? कान खोलकर सुन लो वह अब मरी बहू है। खबरदार ! जो उसके खिलाफ कुछ कहा तो जीभ निकाल लूगी। सबके लच्छन मैं जानती हू कि किसके घर के पर्दे के पीछे क्या होता है। दूसरो पर उगली उठाने स पहले अपने घर के अदर तो झाको चौधरिया ! हमे अपने हाल पर छोड दो भूखे प्यासे रह लेंगे पर तुम्हारा द्वार न देखेंगे।'

बिरादरी ने अलग कर दिया विज डाला हुक्का पानी बन्द।

"तून कुछ ज्यादा ही सख्त बोल दिया', घर आकर मगतू कहने लगा तो वह धमकी—'क्या सख्त बोल दिया मुह न नाच लिया उन सबका शुक्र करो।"

मगतू गाव के चबूतरे पर लोगो को गप्पें हाकते और हुक्का गुडगुडाते देखता तो मन होता घडी भर वह भी महफिल म बठ। दिल हुलसाकर रह जाता।

एक दिन चल ही पडा। उस आते देखकर सभा झट से विसर्जित हो गई। वह कट गया। आह भरकर रह गया। कभी जात हुए लोगो की पीठ देखता तो कभी खाली चबूतरा।

रात आधी स अधिक बीत चुकी थी।

सारा परिवार गहन निद्रा मे था। मगत् पेशाब के लिए बाहर आगन म आ गया। कितना नीरव ससार है स्वय म खाया सा।

उसका हृदय बमता के लिए आतुर हो उठा। साध नही रहा तो बाकी सारा परिवार घर पर है आज। पर वह भाग्यहीन बसता जाने कहा भटक रहा ह ?

माथ पर कलक लगाकर भागा था। नीमो पर पता नही, उसकी आख कसे मली हुई। भाभी ता मा का रूप होती है। बुरे विचार कैसे आ गय उसके मन मे ?

रात का अधेरा छाने लगा था। खेतो से न लौटे थे वे। बसता ने देखा नीमा अपने यौवन को छलकाती, सिर पर खाली मटका लिय पणिहाद की आर जा रही थी। उसने हाथ बढाया। नीमो ने सोचा दवर मजाक कर रहा है। हसकर बोली, "क्या पागल हा गया है मरा दआर !" मगर वह पास सटक गया— नीमो, मैं तुझे प्यार लडखडा रही थी उसकी जुबान। नीमो ने उसकी नीयत पहचानकर डपट दिया, "दजोर ! बदतमीजी करगा तो हल्ला मचा दूगी।"

और वह उस धक्का दकर भाग खडा हुआ। मिट्टी का मटका फूट गया।

'बहू। तू घर के अदर चलत कैसे गिर गई ?' बडडी ने पूछा तो नीमो टाल गई 'गीली मिट्टी पर पर फिसल गया था' वह तो साध न पूरी बात बताई। कही दुबककर देख रहा था।

बसना जा घर स भागा तो लौटकर न आया। न चिट्ठी न पत्तर। जाने कहा धक्के खा रहा है, बेचारा।

मगतू न आसमान की ओर देखा।

तारे खूब टिमटिमा रहे थे ! चाद भी आज मुस्कराता सा लगा। जरूर लौट आएगा उसका बसता।

वह भीतर आकर पुन बिस्तर पर लेटकर सोने की कोशिश मे था।

पर नीद की जगह अतीत का चलचित्र लगातार चलता रहा। बिरजू नीद मे खास रहा था।

बिरजू की चिट्ठी आई थी पूरे सात साल बाद। दस जमातें पढ़कर जो घर से निकला तो खोज खबर कुछ न दी। जाने कैसे कैसे पढा—पूरी सोलह जमातें पढकर वह क्या कहते हैं प्रोफेसर हो गया, दिल्ली मे ही। तब जाकर चिट्ठी लिखी। दाढी मूछ वाले लडको को पढाता है। बडडी के पाव तो जमीन पर न पडते थे। मर्दों को सुना सुनाकर औरतो से कहती, ' बिज ले बिरादरी, मरी बला से । मेरा लडका प्रोफेसर हो गया। मेरे दूध का असर है। एक से एक लायक जाये है। और तो किसी चौधरी का चपडासी भी न बना।" सुनने वालो को डाह होती। उनके टुकडो पर पले मगतू का लडका बडा आदमी हो गया। बड्डी की अकड तो अब टूटने से रही। नये उपाय खोजते पर वह उनकी छाती पर मूग दलती ही रही।

भादर को बिलासपुर म नौकरी मिली तब तो बड्डी के और भी पख निकल आए। अपने बेटो के गुणो का बखान करते न थकती थी। कहती बसता भी नौकरी पर गया है। चाहे गाव म कहानी कही सुनी जाती थी कि उसने नीमो स हरकत की है और मारे शर्म के घर से भागा है। पर बड्डी के सामने ऐसा कहने की हिम्मत कौन करता।

भादर घर आया तो अम्मा, बापू साधु, नीमो सबके लिए कपडे और जूते खरीद लाया। मिठाइया भी खूब लाया था। गाव मे खबर फैल गयी कि भादर मिठाई का टोकरा लेकर लौटा है। खोआ पनीर की मिठाई। जनेबी ऐसी कि मुह मे डालते ही पिघल जाए। चबानी तो बिल्कुल न पडे। चौधरियो के मुह मे पानी आ गया पर बिज से बधे थे।

उपरली ताई आगन मे आकर बोली थी, "बडडीए ! सुणया तेरा भादर खूब मिठाई लई कने आईरा।"

बडडी ने उसकी लालसा को हवा दी "पूछ न, जी। क्या मिठाई जी करता है बस खाते ही रहे। तुम्हे चखा देती, पर तुम तो हमारे हाथ का पानी भी नही छूती हो—बिज जो डाला है बिरादरी ने।"

ताई ने लार का घूट भरकर होंठों पर जीभ फेरी "मुए ए चौधरी। मैं तो नीमा को अपनी बहू मानती हू।"

नीमो नया जोडा पहनकर बाहर निकली। ताई आखें फाडे कहे जा रही थी,

—"बोलो भला इसके माथे पर लिखा है कि यह बाहमनी नही—पर मैं अकेली भला क्या करू ?"

बडडी न बर्फी की डली लाकर ताई के हाथ पर रख दी। मुह म डालत ही ताई हिलारे लेने लगी, "तेरी किस्मत तेरे ही साथ है बडडी।"

बडडी का सीना फैल गया।

भादर घर पाच दिन ठहरा। जाने से पहली शाम बड्डी से बोला, "अम्मा ! नीमो को मेरे साथ भेज दे।"

बडडी ने आखें तरेरकर उत्तर दिया, ' परदेश म बहू को ले जाएगा। कहा, कैसे रखेगा। शहिर म खुली आबू-हवा भला कहा नसीब ।

भादर ने चिरौरी की, "अम्मा ! तडके काम पर जाना पडता है। रात को दर से लौटता हू। रोटी-पानी का ठौर नही लगता। नीमो होगी तो पेट भर चैन से दो जून खा तो सकूगा।"

बडडी के दिल मे प्यार की धारा बहती रहती थी। बाहर से जितनी कठोर थी, भीतर से उतनी ही नरम। बादाम की तरह। झट पसीज गयी, "मुआ ! सच बोलता है। वहा कौन सी अम्मा बठी है जो प्यार से खिलाएगी। ल जा बहू को, पर देख इसका ठीक से रखना। देख भालकर, शहिर के लोग अच्छे नही होते। '

सुबह भादर और नोमो चले तो आखें पोछकर बोली, "बसता का भी पता करना किधर है मुआ। चाहे गलती कर दी थी पर अब पछता रहा होगा है तो तेरा भाई ही। मिले तो कहना घर आ जाना। अम्मा याद करती है।" फिर मगतू की ओर मुखातिब हुई, "तू जा इनके साथ। बस म बिठा आना। बहू बेटा परदश जा रहे है।"

मगतू सामान उठाकर आगे चल दिया। नीमो ने भादर को डपटा, ' बापू से सामान उठवाते तुम्हें शरम नही आती " पर बड्डी ने टोक दिया, "परदेश जा रहा है, बहू, खाली ही चलने दे "

वह उन्ह तब तक देखती रही जब तक वे दिखत रहे। फिर शून्य मे भी देखती रही। जब साध ने टोका, "घर चल अम्मा, मुझे भूख लगी है" तो चौककर आखें पोछती हुई मुडी।

घर आकर साध को लिपटाकर फूट फूटकर रोने लगी।

उस दिन भाग्य बड्डी के आचल म उतर आया था।

खेलते बच्चे सदेशवाहक बनकर भाग खडे हुए। कोई पैंट बाबू गाव की तरफ आ रहा है। हाथ म चमडे का बक्सा है। कधे पर थैला लटका हुआ है। खूब गोरा चिट्टा है। चेहरे पर हसी तो कतई नही है। खुसर पुसर होने लगी। जरूर कोई सरकारी अफसर होगा। कही पुलिस न हो। अब पुलिस भी बिना वर्दी आने-जाने

लगी है। चोरो डाकुओ को पकडने के लिए बहुरूपिया हो जाती है। नहीं वे पुलिसे को आते देख भाग न खडे हों। सब स्त्रियो ने अपने अपने घर टहकी से तकलो। किसी ने कहो चोरी तो नही की। कही किसी से झगडा तो नहीं किया। आश्वस्त होकर खिडकियो, दरवाजो, मुडेरों पर से झाकने लगे। कौन बाबू है। तभी हीरा चाचा के मुह से निकला, अरे, "यह तो बिरजू लगता है। वही चाल ढाल, वही नैन नक्श बिरजू ही है।" सबने पहचान लिया।

बिरजू ही था।

सात वर्ष से ऊपर हो गय थे गए हुए को। कैसी शान से चल रहा है। कितना सुदर दिख रहा है। कितना सामान लेकर आ रहा है। जरूर कपडे और मिठाई लेकर आया होगा दिल्ली से। पर उन्होने तो मगतू पर 'बिज' डाला है। अरे, अब काहे का बिज ? भादर चला गया, नीमो घर नही। बड्डी कुछ देगी तो खान म क्या हर्ज है। जमाना बदल रहा है।

सभी के मुह से एक सर्द आह निकल गयी। वाह री किस्मत। क्या था मगतू। क्या थे यह लौंडे। लागो की पीछ पीकर जीते थे। टुकडो के लिए तरसते थे। बडडी की नजरें तो अब आसमान पर नाचेंगी। किसी को कुछ नहीं गिनेगी।

बडडी दौड पडी। उसका बिरजू आ गया। उसने पाव छुए तो छाती से चिपटा लिया। फफककर राने लगी, "कहां रहा रे तू इतने दिन। पत्थर दिल हो गया था। अम्मा की याद तक न आई तुझे ?"

बिरजू की आखो म भी पानी आ गया।

फिर वह पूरे गाव मे गया। घर घर। सबके पाव छुए। लोग कहते, 'बिरजू। बडे दिनो के बाद आया, तेरी अम्मा तो तेरे लिए बडी रोती थी।"

मगतू ने उसे गले लगा लिया। पुत्र से लिपटे, उसके गले मे दद महसूस हुआ। दिल उछलकर बाहर आने के लिए उतावला था। आखो के पानी पर मुश्किल से काबू किया। मर्द भला कैसे रोए, उसकी मर्यादा औरत से बडी है। वह छिछौरा कैसे हो जाए।

मा-बेटा रात भर न सोए थे। दुनिया भर की बातें। मगतू पसरा पसरा सुनता रहा जसे आज भी काफी रात तक दोना भाइयो को बतियाते सुनता रहा था।

बडडी उसे बता रही थी नीमा को घर लाने पर बिरादरी ने उनके साथ क्या बदसलूकी की थी, तो बिरजू बोला, अम्मा ! तूने बहुत अच्छा किया। जात पात से जो ऊपर उठ गया वही आदमी है, नीमो भी तो किसी मा बाप की ही लडकी है। उसे दुत्कार देती तो जिदगी भर चैन न मिलता तुझे।"

बडडी का मातृत्व छलक उठा था। पलटकर बोली, 'रे बिरजू तू कब करेगा ब्याह ? तेरी लाडी को देखने की बडी इच्छा है। पता नहीं अब कितने दिन जीना

है। उसका मुह देख लेती तो चैन से मौत तो आ जाती।"

"ऐसा क्यो बोलने लगती है, अम्मा?"

"तू बता रे, कब करेगा ब्याह?"

'तू कहती है, तो जल्दी ही कर लूगा।"

'सच रे।" उसका अतर छलक पडा था, "देख रखी है तूने कोई?"

बिरजू सकुचा रहा था, "हा, अम्मा।"

'कौन है रे वह?"

'अम्मा! दिल्ली मे ही एक लडकी है। स्कूल मे पढाती है।"

"तब तो मेम होगी रे", बडडी का गद्गद स्वर सगीतमय हो उठा था।

मुह फेरे बड्डी ने उठकर आग जला दी।

गाव की स्त्रिया एक एक कर आ रही थी। क्या कुछ लाया बिरजू। बड्डी सबको एकाध टुकडा मिठाई और फल वगैरह दे देती। सुबह होने तक मर्दों का टोला मगतू के पास बैठकर आगन मे चिलम का धुआ उगलने लगा था। बिरजू के प्रभुत्व मे 'विज' जैसे बह गया। उसने भीतर आवाज दी, "बडडी! भाइ लोगो का मुह मीठा करवा दे। बेटा इतने दिनों बाद घर लौटा है।" बड्डी खूब सारी मिठाई थाली मे डाल लाई थी।

बिरजू ने दिल्ली महानगर के अपने अनुभव सुनाए तो सारे विभोर हो गए थे।

बिरजू ने महीना भर बाद लौटना था। बड्डी की खासी को देखकर हठ जोर देता रहा, 'तू दिल्ली चल पड, वहा इलाज करवाऊगा।" पर बड्डी न मानी, 'तेरे बापू को छोडकर कहा जाऊ यह तो इतना सीधा है कि लोग मुडी पर भी बैठ जाए तो भी चुप रहे साध अभी बच्चा है। घर बार, जगह जमीन किसके हवाले कर दू।"

उसने जाकर ढेर सी दवाइया डाक से भेजी। फला गोली ऐसे खाना, फला ऐसे। पर बडडी जिद्दी थी। कहती थी सारी उम्र बिना अग्रजी दवाई के काट दी अब क्यो अत समै मे धर्म भ्रष्ट करू। जितनी लिखी होगी जिएगी। भगवान ने उठाना होगा तो दवाई क्या बचा लेगी। उसने नही खाई। बिरजू की चिट्ठी आती—दवाई खाते रहना। और दवाई भेज देता तो लिखवा देती—"खा रही हू अब ठीक है और दवाई मत भेजना।" छाती का दर्द बढ गया था। खासी से रात भर चैन न आता। एक रात, खून की उलटी आई और सब छूट गया। मगतू की आखें पत्थर हो गइ। अब जिन्दगी कैसे कटेगी। बड्डी के रहते तो कोई फिक्र न थी।

बिरजू रोता हुआ आया। भादर चीखता चिल्लाता! नीमो का पैर भारी था। नौवा चल रहा था। वह न आ सकी। धर्म-कर्म से निवटे तो बिरजू ने बापू से कहा था, 'मैं कल जा रहा हू 'मेरे साथ चलो बापू दिल्ली। साध को वही पढा

लूगा अब यहा क्या रखा है ।"

पर मगतू न माना, "पुरखो की निशानी है, यहां पर। उनका बनाया यह घर, यह जमीन, यह विरासत। तेरी मा ने इसे जिन्दगी से सहेज कर रखा था। अब जब तक आखिरी सास है यही काट दूगा मेरे लिए शहर मे यू भी मुश्किल है एक इच्छा थी—साध का ब्याह कर घर की चाबी बहू को सभाल देता तो फिर चैन की नीद सोता।" बिरजू साध के ब्याह मे नही आया था। रुपये भिजवा दिए थे।

भादर आया था। नीमो का बच्चा अढाई महीने का था वह नही आई। शायद इस डर से कि उसके जाने से कही बिरादरी ब्याह मे दखल न कर दे। साध की बहू ने घर मे पैर रखा और मगतू ने चाबिया उसके हवाले कर दी थी।

ईश्वर को न जाने क्या मजूर है। छ महीने मे ही साध उसे प्यारा हो गया। उलटिया और दस्त जो चिपट तो जान लेकर ही छूटे। डॉक्टर ने कहा—' हैजा मार गया। वक्त रहते पहुचता हस्पताल तो शायद बच जाता।" पर कहने की ही बात है। मरना जीना क्या आदमी के हाथ है ?

वह तो चला गया इस जवान बहू का क्या होगा ? सोचते सोचते कब आख झपकी उसे नही मालूम। प्रात आख खुली तो दिन चढ गया था।

साध के घम कम से मुक्ति मिल गयी थी।

साझ को सारा परिवार इकटठा बैठा था। बिरजू ने मगतू से कहा, "बापू ! अब छोडो यह जजाल। सीधे दिल्ली चलो। वहा आराम से रहो। यहा अब क्या है ?' अनीता ने समर्थन किया, ' आप पर हमारा भी तो अधिकार है, बापू !"

भादर और नीमो ने बिलासपुर के लिए कहा पर मगतू ने बोझिल स्वर से उत्तर दिया "तुम ठीक कहते हो, पर अब तो साध की बहू की जिम्मेदारी भी मुझे ढोनी है !"

अनीता ने ससुर की बात का निराकरण किया, "रत्नो को तो हम साथ ले जा रहे है। सोलह वर्ष की बच्ची है पढा लिखा पर कहीं ठौर पर पहुचाएगे इसे आप अपनी चिन्ता करे।"

"बापू ! सीधे हमारे साथ चलकर अब पूजा भजन करो," बिरजू ने जोडा।

"तुमने ठीक सोचा मरे बेटे," मगतू प्राय रुआसा होकर बोला, "इस बेचारी का तुम्हारे सिवा अब था ही कौन । मेरी बात छोडो। चल भी पडता, पर सोचो पीछे कही भटका हुआ बसता घर आ गया तो क्या देखेगा। अब कम से-कम उसके लिए तो मुझे यहा रहना पडेगा भोला आदमी है, आएगा जरूर ।"

तूस की आग की तरह खबर गाव मे फैली। साध की बहू को बिरजू दिल्ली ले जा रहा है। बिरादरी की भौह चौडी हो गइ। बिरजू को इतना खोटा न समझते

थे जो बेटी समान भाभी पर आख मैली करता। घार कलियुग आ गया है। अब दो रखेगा, एक शहरी मेम, एक गांव की अल्हड छोकरी !

मगतू को बिरादरी ने खूब फटकारा, उसके पास बैठकर हुक्का पानी पीना भी पाप है। विज पूरा हो गया।

बिरजू चुप था।

अनीता, रत्नो, नीमा और भादर रा रहे थे। मगतू के गले म दद था पर आखें सूखी थीं। भादर का मुन्ना टुकर-टुकर दख रहा था।

बस आकर रुकी।

नीमो, रत्नो, अनीता बारी-बारी बस पर सवार हुए। भादर आंखें पोछता चढा और अत म बिरजू भी। मगतू ने सामान छत पर रख दिया और बस चल पडी।

मगतू ओझल होने तक बस को देखता रहा।

उसके गले म सूजन का दद लगातार बढता जा रहा था।

छिन्दे

आलोक किसी सुरग मे भटक पथिक की तरह छटपटा रहे थे । उन्हे लगा दम घुट जाएगा ।

"उठिए, आठ बज गए", तारा के स्वर ने उन्हे अध चेतना मे झझोडा । छटपटाहट तनिक कम हुई ।

आखें मलते हुए उन्होने देखा तारा उनके बालो मे उगलिया फिरा रही थी ।

"चाय !"

आमने सामने बैठे दानो पति पत्नी चाय सुडकने लगे । सडिप सडिप सडिप मानो दो मेढक धीरे धीरे टरटरा रह हो। किसी निजन मे खोए हुए पथिक से जो माग के लिए चिंतित होता है। अन्तर के एकाकी पथिकों की तरह !

बाहर गली मे तरह तरह की वेढगी व बेहूदी सी आवाजें उभरती हुई खिडकी के शीशो व पर्दों को चीरती हुई कानो से टकराने लगी थी । आलोक को तीन वर्ष होने को आए है इस मकान मे, पर कभी भी वे इसमे मन नही रमा सके है, एक बार भी नही ! उनके कॉलेज के कितने ही सहकर्मी प्राध्यापक है जो बेहतरीन व आधुनिक कॉलोनियो म महगे से महगे मकान लेकर रहते हैं । अपने स्कूटरो स कालेज जाते है पर वे है, कि आज तक एक साइकिल भी नही खरीद पाए । आने जाने के लिए बसो म धक्के खाते हैं । घटो अड्डे पर बसा का इन्तजार करते हैं । जब अन्य साथी लोग तीन चार हजार रुपये की मासिक ट्यूशनें करते हैं तब वे अपनी लेखनी व कहानियो की यात्रा मे व्यस्त होते हैं । प्रिंसिपल ने कितनी ही बार कहा कि यह लिखना विखना छोडकर कुछ कमाना सीखो, पर वे नही कर पाते है समझौता अन्तत इसी मकान म अपनी इच्छा के विरुद्ध रहने पर मजबूर भी है । उन्हे कभी-कभी ग्लानि भी होती है, कि व परिवार को वह सुविधाए नही दे पात जो उन्हे देनी चाहिए पर व बेबस है कलम नही छोड सकते या शायद कलम उन्हे छोडना नही चाहती ।

पिछले कल ही तो प्रो० विमल ने उनसे पूछा था, "आलोक, क्या मिलता है तुम्हे यह कागज रगने से ?"

"आत्मसतोप और शायद तृप्ति !" उनका सक्षिप्त उत्तर था।

"छोड यार, यह सब चोचले हैं", विमल ने सुझाया।

'कोई ढग का काम किया कर।"

आलोक मुस्कराए थे। कौन समझता है उनकी बात जो यही समझेगा।

"गली म तो आज सवेरे ही पुराण चालू हो गया।" तारा न उन्हें विचार मुद्रा स झझोडा।

उन्होन शू य दष्टि तारा की ओर फेंकी ज्यो रात का पथिक चाद के निकलने की दिशा की ओर देखता है।

चाय का लम्बा घूट भरा। उस भीतर खीचकर बोल, "तारा ! सोचता हू मॉडल टाउन मे मकान ले लू। प्रो० शर्मा बता रहे थे वहा कोई मकान खाली भी हैं।"

तारा का गणित जुडा था ही, 'सात आठ सौ किराया कहा से भरोगे? यहा अढाई सौ मे कट रही है, काट लेत है।'

वह हमेशा बचत के बारे मे सोचती है। पर वह जितनी ही बचत की परिधि मे सिमटना चाहती है घेरा उतना ही अधिक तग होता जाता है।

आलोक ने सिगरेट मुह मे दबाकर उसे सुलगाया। कश खीचा। धुआ तारा की ओर उगलकर बाले, "कुछ टयूशनें कर लू, खाली समय तो रहता ही है।"

तारा जानती है, यह उनकी प्रकृति के विरुद्ध होगा। उसके कहने पर शायद वे यह कर भी लें पर भीतर कुठित होते रहेगे। यह उनकी प्रतिभा के प्रति अ याय हागा।

"आलोक !"

वे प्रश्नसूचक दृष्टि से पत्नी की ओर देखने लगे।

"पब्लिक स्कूल से नौकरी की आफर मुझे कितनी ही बार आयी है।"

गहरा कश खीचकर उ होने भागती ट्रेन की तरह पुन धुआ उगला।

"हू !"

"मैं नौकरी कर लू तो क्या हज है ?"

वे अभी उत्तर का निश्चय कर ही पा रहे थे कि सहसा मा भीतर आकर बोलने लगी, 'हज है खाक दिनभर घर मे बेकार पडी रहती हैं। अरे, मैं पूछती हू क्या पढ लिखकर भी औरत को सिफ चूल्हे मे खपना है। यहा काम ही क्या है दो बच्चे, टैट फट होकर सवेरे स्कूल चले जाते हैं और आते हैं अधेरा हुए। फिर दिनभर यहा जमुहाई मारते रहो। हम तो थे अनपढ गवार, घर मे काट दी उमर पर बहू के लिए यू बेकार पडे रहना जरूरी है '

आलोक ने मा को यही टोक दिया, "बैठ जा तू मा।'

"अरे ! मैं बैठी कि नही पर बहू जा तू नौकरी मिलती है तो कर ले।'

"पर मा इस घर का काम कौन करेगा", आलोक ने हस्तक्षेप किया।

"तू चुप रह", मा ने उसे डाटा, "बडा आया घर की चिंता करने वाला मैं अकेली चार गुना काम कर सकती हू।"

इसमे शक नही था। मा मशीन की तरह काम करती थी आलोक को याद है दादा दादी, सात बच्चो का परिवार और पिता। वे तो पूरे तानाशाह थे। शेव का सामान तक बिस्तर म चाहिए था, वह भी मा के हाथ से। कोई और नही दे सकता था पर मा ने चेहरे पर कभी शिकन न लाया था कभी।

कहकर वे चली गयी पर जिस ढग स मा न इस विषय को बद किया वह आलोक की पकड से बाहर हो गया। उन्ह लगा तारा ने जान-बूझकर मा से उन पर दबाव डलवाया है। वह जानती है मा की बात आलोक कभी नही टालते।

आलोक कछुए से अपने कवच मे सिमट गए। वे प्राय स्टडी रूम मे बद रहते थे। उन्ह लगता तारा उनकी उपेक्षा कर रही हैं। उस उनकी जरूरतो का कोई ध्यान नही है। बच्चे उसकी नौकरी के कारण उपेक्षा का शिकार हो रहे हैं। वृद्धा मा दिन प्रति दिन निबल होती जा रही हैं। इस अवस्था म जब आराम की जरूरत थी, उसे घर सभालना पड रहा है।

उन्हें अपनी निबलता पर झल्लाहट होती। क्यो उन्होने दढता से तारा को नौकरी करने से न रोका। वे इस घर का खच चलाने म अक्षम तो नही हो गए हैं।

तारा ने पहला वतन किस कदर रौब से उन्ह देना चाहा था। माना अपनी आर्थिक स्वाधीनता का रौब उन पर जमाना चाहती हो। मानो जताना चाहती हो *कि वह भी अब कमाने लगी है। ठीक ही हुआ जो उन्होने उपेक्षा कर दी थी,* "मा के पास क्यो नही देती ?" और वह बडी सहजता से चली गयी थी मानो सचमुच ही उन्होने मा क पास रुपये दने के लिए कह दिया हो। तारा को हो क्या गया है। वह मेरी भावना क्या नही समझ पाती। मा रखती है रुपये। घर का पूरा खच वे चलाते हैं। वर्षों से हर कमी पूरा करने की कोशिश करते रहे हैं। इस धुन मे अपने सम्मान तक का सत्यानाश कर लिया है उन्होन। अपने समय की बर्बादी ऊपर से करते हैं। बसो मे धक्के खाकर कॉलेज पहुच कर सिर खपाते हैं और थके मादे जब घर पहुचते हैं तो तारा नदारद! पहले वाला उसका प्यार कही खो गया वे उसके लिए तरसते हैं।

कल ही बस छूट गयी थी तो रिक्शा म जाना पडा था। दो रुपये के लिए उस गवार रिक्शा वाले न उन्हे कितना अपमानित किया था। कॉलेज तक उसका तीन बनता था पर वह पाच पर जो अडा तो बस मजमा ही लग गया। पाच देने ही पडे थे। माना यह उनकी शारीरिक दुबलता के कारण ही हुआ पर तारा न उन्हें स्कूटर खरीद लेने की सलाह दे दी होती तो यह सब अपमान तो न सहना पडता।

कुर्सी त्यागकर आलोक चहलकदमी करने लगे। स्टडी रूम की खामोशी भी उन्हें आतंकित करती है। लगता है जीवन का आकर्षण खो गया है।

वे नौ बजे से यहा बैठे हैं। पर तारा ने उन्हें एक बार भी आकर नही पूछा कि चाय काफ़ी तो नही पिओगे। उसे क्या जरूरत! अब वह स्वय जो कमाने लगी है। उनकी दृष्टि घडी की सुइयो पर अटक गयी। पौने ग्यारह बज गए थे। चारो ओर सन्नाटा छा रहा था। अलबत्ता, गली म एक आवारा कुत्ता रह रह कर भौं भौं कर देता था। इसी क्रम म दो चार और कुत्ते 'भौं भौं' म ही उत्तर देते। फिर काफी लम्बा मौन। फिर भौं भौं भौं भौं बाकी जीवन विश्राम के आचरन म अगडाई ले रहा था।

वे पुन कुर्सी पर बैठ गए।

कालेज की मीटिंगो म वे कितना गरजते ह। उनके अकाट्य तर्कों से आग उनके विरोधियो के हृदय काप जाते हैं, प्राचार्य स लेकर चपरासी तक हर कोई उनका कितना सम्मान करता है। पीठ पीछे बुराई करन वाल भी हैं। पर उससे उन्ह क्या फर्क पडता है। प्रो० निरजन सिह। वही उनका सबसे बडा विरोधी है। नालायक बेहूदा आदमी। आत्मसम्मान नही जानता किसी का क्या सम्मान करेगा।

बाहर के विरोधो की उन्ह परवाह नही पर घर म तारा के हाथो मिल रही उपेक्षा से वे स्वभावत परेशान ह। नौकरी के लिए तारा को मा से दबाव डलवाने की क्या जरूरत थी। वे ही उसे क्यो इन्कार कर देत।

बच्चों की तरफ से भी तारा उदासीन हो गयी है। कल ही उन्होंने धवाल को स्कूल जात देखा था। उसकी कमीज ठीक से प्रस की हुई नही थी। साफ शिकन नजर आ रहे थे। क्षिप्रा का स्वभाव चिडचिडा हो गया है। मा सब्जी म कभी नमक ज्यादा डाल देती है तो कभी मिच! जब व मिच खात ही नही हैं तो दुकान से खरीद लाने म तुक क्या है। उनका गैसट्रिक ट्रबल मिच ही के कारण तो बढ़ा है। ऐसी बदमजा रोटी खाने से तो बेहतर है वे जूस पीकर रह जाए। तारा क होत भी उह यह सब झलना पड रहा है।

जीभ पर कसैलापन उभर रहा था। उन्होन पानी के कुछ घूट भर। पेट म गडगडाहट फैल गयी, उन्ह लगा। तारा की उपेक्षा क कारण ही तो उनका पेट खराब रहता है।

तभी बारह का गजर बजा।

उन्ह सो जाना चाहिए। वे शयन कक्ष मे आ गए। तारा बेसुध पडी थी। कमरे की धीमी रोशनी म उन्ह प्रत्येक वस्तु अजनबी सी दिखी। किसी को उनस आत्मीयता नही रही है। जान बेजान सब उनके पीछे हैं। हर चीज म व्यग्य है। उन्हें देखकर सब चीजें खामोश-सी कानाफूसी करती हैं।

वे बिस्तर पर पड गए। तारा दाए बिस्तर पर दा. करवट पडी थी। वे बाए

बिस्तर पर बाइ करवट पड गए। कब साचा था कि वे इस सून चौराहे पर आ खडे हागे जहा हर कोई उनकी उपेक्षा करेगा। अपने ही घर मे वे बे पहचाने से हो जाएगे। जीवन का सारा स्नेह बेरुखी म बदल गया।

उन्ह अपना बचपन याद आया।

सब भाई बहनो के बीच भी वे निता त अकेले रहे है। पिता का स्नेह भी अपेक्षाकृत उन्हे कम मिला है तभी तो उनके सब भाई विदेशो मे आनन्द लूट रहे हे और उन्हे इस घुटन मे जीना पड रहा है।

पर जा भी हो व यह मकान अब नही बदलेंगे। व टयूशनें करके आय बढाकर नया मकान ले सकते थे, पर तारा उन पर अपनी कमाई का रौब डाले यह वे कभी सह नही सकते

फिर उन्ह लगा वे किसी गहन सुरग म भटक गए है। वे चिल्ला रहे हैं, पर उनकी चीखें सुरग की दीवारो से टकराकर वापस लौट रही हैं। उनका दम घुट रहा है उन्हे कोई बालो से पकडकर घसीटने लगा है। अनजाना अपरिचित, न दिखने वाला, अधकार मे खोया सा कोई चेहरा।

उनकी नीद टूट गयी।

तारा उनके बालो म उगलियां फिरा रही थी।

"उठें! नौ बज रहे हैं।"

वह चाय का कप उनके हाथ थमाकर चली गयी। क्या समय आ गया पहले वह साथ बठकर चाय पिया करती थी। यही तो उनका निरादर है। इसे वे हलक से नीचे उतारने मे असमथ हैं।

"अरे! आप कहा खो गए?" तारा ने मानो स्वप्न से उन्हे झझोडा, "आज-कल आप क्यो खोए खोए से रहते हैं?"

अन्यमनस्क भाव से उन्होने उत्तर दिया, "नही तो!"

तारा उनके समीप आकर बैठ गयी।

"मैं आपसे कहना चाह रही थी", तारा ने मुस्कराते हुए कहा, "कि शैवाल का जन्मदिन किसी नए मकान मे मनाया जाए।"

आलोक को यही तो चुभता है। तारा हर बात म जताती है कि वह कमाने लगी है— "क्यो यहा क्या बुरा है?"

तारा की आखें फल गयी।

कई वप से आलोक इस मकान को बदलना चाहते थे। अब जब वे इस स्थिति म पहुच हैं ता वह क्या कहे।

तारा को उनके बदले व्यवहार पर हैरानी होती है। काफी कटे कटे रहते हैं। प्राय भुनक कर बात करने लगे हैं। कभी क्रोध न करने वाला आदमी अब झल्लाने लगा है। खाने पीने म इतने लापरवाह कि बिना नमक की सब्जी खा जाते थे।

पर अब भोजन मे मीन-मेख निकालने लगे हैं।

शायद उसकी नौकरी से नाखुश हैं।

पर क्यो ?

उसन तो हमेशा उनकी रुचि, आराम व स्नेह का ध्यान रखा है, फिर वे क्यो उपेक्षित अनुभव करत हैं। अधिक से-अधिक समय वह उन्हें ही देती हैं पर नौकरी करने पर समय की कमी स्वाभाविक भी तो है और नौकरी आज अय्याशी नही, उनके परिवार की जरूरत है।

वह उठकर चली गयी।

पुन जब वह वापस आयी तो आलोक अखबार देख रहे थे।

"आलोक !"

उन्होन अखबार चेहरे के सामने से हटाया और बोझिल स्वर मे "हू !" की।

"मैंन नौकरी से इस्तीफा लिख दिया है।" उसने कागज उनकी ओर बढाकर कहा, "इसे कॉलिज जाती बार हमारी प्रिंसिपल को थमा दीजिएगा।"

आलोक की पलकें जम गयी।

तब सहसा मा ने कमरे म प्रवेश किया। वह अपनी सहज शैली मे आलोक को डाटने लगी, 'क्या बे मब मुक्ति होगी इस गदी गली स ? रोज रोज की गाली गलौच सुनकर हम थक गए हैं इस वातावरण से तेरे बच्चे क्या बन पाएगे। इतना भी सोचने की फुसत नही है तुझ। बस ! अपनी किताबें चाहिए, भलेमानुस कही किसी अच्छी बस्ती मे कोई भला सा घर देख "

कहकर मा चली गयी।

आलोक क चेहरे की रखाए अधिक गहरी हो गयी। तारा के हाथ का कागज वे क्या करें। दिमाग की नसा म खिचाव है।

"तारा ! क्या है यह ?"

'इस्तीफा !"

"छोड दोगी नौकरी तुम ?"

आपकी खुशी के लिए मैं कुछ भी कर सकती हू।'

उन्होने उसके हाथ से कागज खींचा और छि डे करके हवा म उछाल दिया।

'तुम ड्यूटी पर जाने की तयारी करो, मैं आज ही मॉडल टाउन म मकान ठीक कर आऊगा।'

तरेइया

आज तीसरे दिन फिर शरीर केले के पात-सा थरथराने लगा है। घर भर की सारी खिंदे, खेस और पटटू ओढ लेने पर भी खडकू का पाला भागने का नाम नही ले रहा। इस बार तीन साल के बाद यह तरइया फिर आ गया। पवाधी क मत्र ने अल्ले धाग से इसे इतन दिन बाधे रखा, यही गनीमत है, नही तो कोई बरसात खाली न जाती थी। जि दगी भर नीम काढा पीत पीते जीभ की कडवाहट पर खाड का भी असर नही होता। ऐसा राक्षस है यह तरेइया कि बस खून ही चूस लता है। गर्मी मे भी इतनी ठण्ड लगने लगती है जैस नसो मे बफ भर दी हो। वैद तो कहता है भारी बुखार हो जाता है। पर वह जाने या जाने उसकी ब दगी।

फिर पवाधा तो वैद भी अपनी ही किस्म का है। नीम से भी कडवी गोलिया खिलाता है अग्रेजी दवाई का तो नाम भर है। बनती यह क्या कहते हैं वह 'कुनीन' भी नीम से ही होगी उस साल चार गाली खिला दी ता जीभ बस फट ही नही गयी। पर गालियो से क्या होता यह तो पवाधी ने बुखार बाध दिया शर्तिया बाधती है तरेइए को, अल्ले धागे से खैर, वह रात काट ले तडके जाकर पवाधी से टोटका फिकवा लेगा, बुखार की ऐसी तैसी। कल वह कूरम का नया बूट दना है प्रियु मास्टर को। नौ बजे का वैदा था खडकू टूट जाए पर जुबान न जाए। तडके उठकर काम शुरू कर देगा। कुछ देर भी हो गयी तो यू मास्टर कौन पराया आदमी है। जानता नही, खडकू जुबान का पक्का है पर बीमारी मे हाथ भी चले तब न ! खालिस चमड के मोटे जूते बचपन से उन्हे द रहा है। मास्टर का बाप क्या कूरम पहनता था। क्या हुआ अब बडे आदमी हो गए। कूरम पहनना शुरू कर दिया। भीतरी बात वह नही जानता क्या ? करसाण तो उसके ही है, बरसो के बचपन से दखता आ रहा है वह।

पर कल शाम तक वह बूट बनाकर दे ही देगा। जुबान टूटन मे रात का फर्क तो पडने से रहा। सवेरे न सही, शाम को द दिया। हा, शाम की जुबान सवेरे पर तोडना अधम हो जाता पर खडकू ऐसा नही होने देगा बीमारी पर उसका वश थोडे ही है यह कोइ दवता है या पवाधा वैद है जो बीमारी को जीत ले या पवाधी

की तरह अल्ले धागे का टोटका फेंक दे। इतना ही बीमारी जीतन वाला हाता तो मरने दता माघी को बचा न लेता उसे। और माघी न मरती तो इतना अधम दखता अपनी आखा से। अपने ही पूत द्वारा इतना कुकम राम राम ! गौरा तो छितरू के लिए मा जैसी थी। पर राम ही जाने क्या जमाना आ गया न सीता सावित्रिया रही और न रहे राम लछमण भाई ! देखते ही देखते सब बदल गया माघी का तरेड्या नीम के काढे से भी नही हटा था। जान लेकर ही छटा।

कहो उसके साथ भी यही न हो। वह तनिक सा सिहरा। पर झट ही सभल गया। मरना तो एक दिन है ही। मरने से कोई क्या डरे पर अभी करसाणो के कुछ काम पडे हैं। यही कोई आठ दस जोडी चमड के जूत और एक दो कूरम के। करसाणा का अन्न खाया है, राम जी झूठ न करवाये। आगे तो चला न लगा काम न देगा बैदा।

रोशन को पता है उसे परसो बुखार था। प्रिम मास्टर न जरूर बताया होगा। दोनो साथ साथ जाते है। पर क्या मजाल जा बेटा हाल चाल भी पूछने आया हो औरत दगी जाने उसे। चाय पानी दवा दारू की तो छोड। हाल चाल ही पूछ लेता बटा तो दिन म शान्ति चैन स मर ता लेता बुड्ढा। एक दिन मरना ही तो है। फिर डर काह का दो दो पूत जने, अन्त समय पर पानी दने वाला भी न हुआ क्या जिन्दगानी है।

'तू भी मूख है खडक।" उसके दिमाग ने उसे झझोडा, रोशन ने हाल चाल पूछने ही आना होता तो जुदा होकर क्या बठ जाता। भलेमानुस जब बाप का छोडकर अलग बैठ गया तो फिर काहे की आस। उसकी औरत न क्या कुछ गाली गलौच नही किया खडकू को। क्या कुछ नही बका पर मजाल जो पूत ने उस डाटा हो या कि चुप रहन को भी कहा हो। वह गाली बकती थी और रोशन खीसें निपोरता था।

उसे मरना भी चैन से नसीब न होगा। छितरू तो कलक लगाकर चला गया। न दिखाए मुह तो ही अच्छा पर रोशन के लिए तो वह दर दर भटका। अब मरती बार पानी दन वाला भी न हुआ कोई। मर जाएगा भूखा-प्यासा भला यह तरेड्या भी उस जिन्दा छोडेगा। माघी की तरह ले के ही जाएगा। मरा रहेगा अन्दर एक दो दिन तो शायद किसी को पता भी न चले कि खडकू मर गया है।

फिर आएगा रोशन रोता पीटता दुनिया को दिखाने के लिए। जिन्दा बाप की पूछ न ली और मरे हुए के लिए रोएगा, वाह रे जमाने बहू तो पराई गई थी तू तो अपना था कौन किसी का ? बेटा नार सब झूठे रिश्ते।

पर मन नही मानता। सकट की घडी मे बेटा आएगा जरूर उसका हाल चाल पूछने। तनिक सी आहट होती तो वह चौक पडता जरूर होगा रोशन ही पर निराशा ही हाथ लगती।

बरसात धोखा दे गयी थी उस साल। बूंद न टपकी। फसल खेतों में झुलस गयी। किसान निराश नज़रों से आसमान को तकते थे। पण्डित लोग कहते थे अष्टग्रही बैठ गई है। देवी देवताओं की लाख मनौतियां मनाई गयीं। हवन यज्ञ वगैरा खूब हुए पर अष्टग्रही न टली। आतंक सा छा गया था दिलों पर। सृष्टि का विनाश नजदीक था पर धर्मी अभी जिंदा है। बच गया था प्रलय!

गांव के मन्दिर में खूब बड़ा भण्डारा रचा गया था। उस रोज हर अछूत घी टोकरा भर भात परोसा गया था। माघी टोकरा सिर पर उठाए लौटी तो चेहरा तमक रहा था। शीत शीत चिल्ला रही थी। बदन कांप रहा था। आंगन में नया जूता बनाते खड़कू ने ताकीद की, 'अन्दर जाकर सो रह! मैं जरा यह जोड़ा पूरा कर लूं, फिर नीम का काढ़ा बना देता हूं। घड़ी भर में ठीक हो जाएगी।'

माघी ने ढेर सारी खिंदें ओढ़ लीं पर सारा बिस्तर कांपने लगा था। खड़कू का काम लम्बा था जल्दी तो होने से रहा। तभी छितरू आ गया। जवान छोकरा था, पर करता धरता कुछ नहीं था। खड़कू लाख समझाता कि कुछ सीख ले, पर अपने जन्म जात पेशे से आंख चुराता है... चमड़े के काम को अच्छा नहीं समझता। बड़े अच्छे काम करने थे तो बाह्मन या ठाकुर के घर ले लेता जन्म! क्या बन गया खड़कू का पूत। अगर राम जी ने बनवा ही दिया तो अपने जद्दी पेशे से शर्म काहे की भाई। हाथ की कमाई है। कमायेंगे तो खाएंगे। जो करे शर्म उनके फूटे कर्म। खड़कू ने आग्नेय नेत्रों से देखकर उसे डांटा 'कहां मरा रहा दिन भर, ओए! अन्दर तेरी माघी मर रही है। उसकी तो कुछ खबर ले।'

छितरू ने जवाब नहीं दिया। खड़कू की तरफ उपेक्षा की दृष्टि से ताककर भीतर चला गया। खड़कू को गुस्सा आ गया। सतारह साल का लौंडा अभी से उसकी उपेक्षा कर रहा है। उसने सब काम छोड़ा और छितरू के पीछे भीतर आकर तमकने लगा "माघ मर रही है और तुझे परवाह नहीं। बोलने का कुछ असर नहीं। जल्दी नीम का काढ़ा बनाकर पिला इसको... पर छितरू ने टोक दिया, "मुझे आग नहीं जलानी आती।"

खड़कू के लिए इतनी उद्दंडता सहना सम्भव न था। गुस्से से हवा में मुट्ठी उछालकर तमतमाया, "मैं तेरे बाप का नौकर लगा हूं... मुझे आता क्या है। दिन भर तिल का काम नहीं करता। यहां से खिलाऊं मैं तुझे मुफत की रोटी? दाढ़ी-मूछ वाला है। खुद कमा और..." पर उसकी बात पूरी होने से पहले ही छितरू बाहर चला गया था। अब चाहे खड़कू थके झके अपना काम करे या नीम का काढ़ा माघी के लिए बनाए और पिलाए।

माघी को हर तीसरे दिन बुखार आने लगा। उसका रंग आम के गिरे पत्ते का सा हो गया। खड़कू ने चमार गड्ढे पर मन्नत मनाई। लच्छे पुरोहित के थड़े पर जाकर सिद्ध बाबा दियाटिया की मनौतियां की। काली माता का कढ़ा प्रसाद

चढ़ाकर, दया की भीख मागी पर माघी का तरेइया न हटा पवाधी से बुखार बधवा लिया, पर उसके अल्ले धाग का असर भी जाने क्यों न हुआ। शायद पीर रूठ गया था। शेरू चेले ने पूछ दी थी। पीर का मनाने के लिए गड्ढे पर लाख नाक रगड़ी, पर उसकी किरपा न हुई। कुछ लोगों ने दवाई देने की सलाह दी, पर पवाधा वद घर पर नहीं था जब तक वह लौटा माघी की चिता जल रही थी।

खड़कू उसकी मौत के बाद अकेला सा हो गया। माघी थी तो उस गाली गलौच मार पीट कर समय कट जाता था। लगता वह कुछ जी रहा है यू कहा जीवन पटड़ी पर था। अब तो सब खाली खाली लगन लगा। छितरू दिन भर घर म नहीं घुसता। रोटी के टैम आता भी है तो बिना कुछ बोले जो भी मिला खाया पिया और चल दिया। वह झीकता रहता है कहा कहा दिमाग खपाए। काम करे, दुकान हाट कर या रोटी पानी का जुगाड़ फिट करे।

खड़कू का लगा बुखार उतर रहा है। शरीर को जरा आराम महसूस हो रहा है। शरीर टूटना ब द हो गया और सारा जिस्म पसीने से नहा रहा है। ठण्ड म है। अब तो इच्छा हो रही है सारी ओढ़निया परे फेंके और ताजा हवा खाए पर पसीन पर हवा लग गयी तो कहते है गठिया हो जाता है। चलने फिरन से भी मजबूर हो जाएगा। कहीं एसा हुआ तो भूखा मर जाएगा। रोटी तो दूर पानी भी नसीब न होगा।

चार दिन की बीमारी मे रोशन बात तक करने न आया तो जीवन भर की बीमारी म कौन पूछेगा। वाह रे पूत ! तेरी बाट जोहते आखे पत्थर हो चली पर तू खुद पत्थर हो गया ।

सियार हुकारने लग थे। बाकी सन्नाटा था। ससार अपनी नींद सो रहा था। सभी को खड़कू की तरह तरेइया तो नहीं हो गया जो आख न लगे। धीरे धीरे पसीना ठण्ड हो रहा था। तो अब बाकी रात चैन से कट जाएगी। तड़के उठकर पवाधी क यहा जाना है ।

फादी से रत्ता भर भी नहीं बनी जिंदगी भर। चचेरा भाई था कभी जमीन दान का झगड़ा, तो कभी आसपड़ोस की लड़ाइ। पर यह क्या जो बुजुर्ग कहते है कि अपना मारेगा भी तो छाव म फेंकेगा। फादी पराया थोड़े था। बचपन से साथ साथ खेले थे दोनो जब से माघी मरी वह लड़ाई झगड़ा भूल कर खड़कू के पास आकर बैठने लगा। कई सलाह मशविरे होते। लड़को का रोना दोनो का एक सा। बात-बात म फादी ने बता दिया कि पास के गाव की हरिजन बस्ती के चढ़तू चौधरी की जाई को ससुराल वालो न घर से निकाल दिया है बाप के घर बैठ गयी है। "खड़कू, तू चाहे तो उस लाकर घर बिठा ले बस जाएगा। घर नहीं बिन घर भूत का डेरा तेरी उमर ही क्या है चवालीस नहीं बयालीस

होगी", खडकू के दिल बैठ गई बात। फादी बिचौला बनने के लिए उतावला था पर खडकू दुनियादारी से नावाकिफ थोडे ही था, खतरनाक आदमी चढतू । कुछ लिए दिए बिना न मानेगा मरी मान तो बेसरू नाई को बीच मे डाल ले। उसकी चालाकी से काम आसान हो जाएगा।

फादी ता था सीधा सादा आदमी पहली ही डपट म कापने लगा, पर बेसरू न जो बात सभाली तो मुफ्त मे ही सर गया। बेसरू को अपनी खुशी से एक मुर्गा और तालू के घर की खालिश बोतल थमा दी थी। हो गया था काम।

खडकू का पसीना ठण्डा हो चुका था, शरीर को राहत मिलने से पुरानी यादें जल्दी जल्दी जेहन मे आन लगी बाकी कपडे हटाकर सिफ खेस ही शरीर पर रहने दिया।

गौरा देखने भालने म अच्छी थी। जवानी का बोझ भी उस पर खूब था। जाने क्यो निकाल दिया था ससुराल वालो ने कर दी होगी कोई ऊच नीच। ऐसे कौन किसी को निकालता है। जो भी हो उसके घर आ जाने से खडकू की किस्मत खुल गयी कहा गवार माधो और कहा चौबीस वष भी गौरा। कोई मेल था। खूब धम-कम करती थी। चमार गडढे पर रोज आती थी, पीर की पूजा करने। हर शुक्रवार को सतोपी माता का व्रत रखती थी। जाने कैसे भटक गए एसी औरत के कदम।

रोशन पैदा हुआ तो छाती मीटर भर चौडी हो गयी थी कितना गोरा चिटा था, बहियनो के लडको की तरह। छितरू हर घडी उसे उठाए फिरता था। कसा आदमी बन गया था छितरू गौरा के यहा कदम रखने भर से। कहा तो पहले घर के भीतर कदम न रखता और कहा अब जबरदस्ती घर से ले जाना पडता दोनो जने मिलकर खूब काम करत थे। घास काटने जाते तो इकटठे गर्मी के भारी सूखे मे तीन कोस दूर स पानी ढोना होता तो भी साथ साथ। सुबह शाम चूल्हे के पास से छितरू उठन का नाम न लेता था।

पहले ता पता लगा कि सौतली को सगी सी जाता है पूत। कही गाठ या मल मलाल नही। पर जल्दी ही शका ने घेर लिया था मन। कही पर नही। भला मा-बेटे के रिश्ते म इतना अधम घुस जाए ऐसा नही हा सकता यह उसका भरम है।

गौरा भी छितरू के साथ हसती थी। खूब मजाक ठठा करती थी—खन खन छन छन, पर जस ही खडकू सामने आया ता उसे साप सूघ जाता था। छितरू के चेहरे का रग भी उस दखत ही उड जाता था उससे बात भी नही करता था। मन की शका गाढी हो गयी थी।

अब लगा होने छितरू से गाली गलौच, जूते चप्पल, मार पिटाइ। पर वह

बेशम ऐसा कि सब सहकर भी यही डटा रहा। सैर का त्योहार था उस रोज। खडकू ने नया जूता बनाया था उस रोज किसी करसाण के लिए, मोटे चमडे का। उसमे सनन्नू ने कुछ गाठे लगानी बाकी थी, लग रहा था मन म उफान तमका, 'तुझे मैंने कहा था ओए गधे कि तू अन्दर पडे कुछ जोडे करसाणो के घर दे आता चार जून खाकर औरतें की तरह भीतर घुसा रहता है।"

छिनरू ने जवाब दिया, "मुझसे नही उठाए जाते चमडे के जून तू खूद दे आ। मैं घर पर काम करता हू यही करूगा।"

खडकू का पारा चढ गया, "तरी यह मजाल " कहकर हाथ म पकडे नए जूते से तडातड उसे पीटने लगा। जाने क्या क्या बकता जा रहा था।

'बापू! बस कर अब नही तो गजब हो जाएगा", छितरू कह रहा था पर खडकू के हाथ न रुके। गौरा बीच म आ गयी, "क्या पागल हो गया है जवान लडके को यू " पर उसकी बात अधूरी रही खडकू ने धक्का मारकर उसे परे गिराया और तडातड तड तड तडाक खडकू चाहता था छितरू घर छोडकर भाग जाए पर वह नही गया खडकू का वहम पक्का हो गया।

करसाणो के जून बने थे। गाठ बाध कधे पर लाठी से लटकाई और चल दिया, ज्वाला से भरा हुआ।

शाम का लौटा तो चूल्हे के पास खुसर पुसर हो रही थी। वह दबे पाव दीवार से सटकर सुनने लगा छितरू कह रहा था, "गौरा! मैं तो तेरे लिए इतनी मारपीट गाली गलौज खा रहा हू नही तो एक पल भी यहा न रहता सवेरे ही बापू का हाथ मरोड कर चल देता ' खडकू का खून खौल गया मुश्किल से जब्त कर सुनता रहा अब की गौरा की आवाज थी, बात तो तेरी सच है पर मुझे ले के जाएगा कहा। यहा अपना घर है आराम से जब तक कट जाए काट लेते हैं फिर देखी जाएगी "।

खडकू आगे न सुन सका बास की अपनी लाठी उठाकर भीतर आया और ढ शा क ढशा गौरा चिल्लाइ। उस पर लाठी पडते ही छितरू ने झपट्टा मारा खडकू के हाथ की लाठी उसने मजबूती से कस ली और धक्का दकर उसे परे गिराया तीन वर्षीय रोशन जोर जोर से रोने लगा था। छितरू ने गौरा को सहारा दिया, 'अब भी कोई कसर बाकी?' तब तक खडकू सभल चुका था।

"इतना बडा अधम हो रहा है मेरे घर मे तेरी मा जैसी थी ओह कुल्टा, बदमाश, राँड वेश्या दोनो निकल जाओ मेरे घर से इसी वक्त। मैं तुम्हारी सूरत भी नही दखना चाहता "

गौरा ने दीन नेत्रो से खडकू की ओर देखा, फिर छितरू की ओर। खडकू की आंखो म शोले भडक रहे थे और छितरू के नेत्रा म प्रतिहिंसा की आग। उसे लगा खून होते भी देर न लगेगी बीच म आ गयी ' छितरूआ, तू चला जा यहा से

निकल जा" खड़कू ने उसे बालों से पकड़ कर झटका, "रण्डी तू दूर हो जा मेरी नजरों से" छितरू ने उसे खड़कू के हाथों से छुड़ाया, "चल तू अब हम यहां नहीं रहेंगे घड़ी भर भी नहीं" गौरा ने रोशन को उठाना चाहा पर खड़कू टूट पड़ा, "यह मेरा लड़का है, इस पर तेरा कोई हक नहीं, इसे मैं अपने पास रखूंगा।"

छितरू ने रोती हुई गौरा की बांह पकड़ी, "चल तू नहीं रहेंगे हम। यहां इसको भी यहीं रख लें," खड़कू समझ गया इस सिर्फ गौरा चाहिए चिंगारियां छोड़ते दहाड़ा—"दूर हो जाओ, चले जाओ मेरी नजरों से मत जाओ।"

गौरा रोती हुई निकल तो पड़ी, पर उसकी दृष्टि रोते हुए रोशन पर थी। खड़कू लड़के को उठाकर चिल्लाया, "आंखें फोड़ दूंगा जो पीछे मुड़कर देखी।"

बाहर घुप्प अंधेरा था, कृष्ण पक्ष की नवमी की रात। एक रोटी चूल्हे में जल गयी और दूसरी तवे पर। परात में गूंथे आटे पर पपड़ी जम गयी चूल्हे की आग मन्द पड़ गयी थी। रोशन लगातार रोए जा रहा था और खड़कू उसे चुप कराने की कोशिश कर रहा था। भीतर तवा धधक रहा था और बाहर ज्वाला फूट रही थी। वह छितरू की अपेक्षा निर्बल न होता तो खून हो जाता।

रोशन रोते रोते सो गया और खड़कू रात भर सिर हाथों में थामे बैठा रहा। अगले दिन वह उन्हें ढूंढता रहा ताकि गौरा को मनाकर पुनः घर ला सके। जो अधम हो चुका, राम जी उसे मुआफ करे। आगे औरत संभल जाए तो अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा। पर उन्होंने नहीं मिलना था सो नहीं मिले।

नींद टूटी तो सूरज आंगन में चढ़ गया था। आज पहली ही बार ऐसा हुआ नहीं तो वह अंधेरे में ही उठ खड़ा होता था। रात बुखार उतर जाने के बाद बहुत देर तक नींद नहीं आई थी कठफोड़ा बोलने लगा था तब तक तो आंख नहीं झपकी थी हां, मुर्गे ने बांग नहीं दी थी।

वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। मास्टर का बूट बनाना था। पवाधी के यहां जाकर तरेइया बंधवाना था। अपने लिए रोटी पानी का इंतजाम क्या पहले करे, क्या बाद में। दिमाग उलझ गया। तरेइया पहले बंधवाले ? नहीं प्रिमा मास्टर आएगा तो क्या सोचेगा। खड़कू ने झूठ बोला अब कहीं मुंह छिपाकर भाग गया फिर भूखे पेट तो भजन नहीं हुई है राम जी चलो पहले इस राक्षस को बंधवा ही लें।

वह गुनगुनाता हुआ निकल गया

पार ले झरोखें इक सौतण उतरी जी।
सौतण उतरी
इहां सतरे जिहा राते बिजली

हुण कहिदा माहणुआ
सौतण हार ल्याई वे ।

जीवन की हजारो सुबहे उसने इ ही प्यागडो को गात गुनगुनात काटी हैं। रोशन पीठ पर पटके से बधा होता हाथ काम मे उलझे हात और होठा पर गीत।

गौरा के जाने के बाद जिदगी का सहारा बचा ही क्या था। बस रोशन के लिए दिन काटने थ सो काटे। तीन साल का बच्चा था। उसक लिए बाप क्या मा भी बनना पडा। अपन हाथा स खिलाया, पिलाया, पाला पोसा, पढ़ाया लिखाया, बडा किया। पढने मे कितना तज था। बडे बडे बाहिमन ठाकुरा के ऐसे न हाग राम जी की मर्जी ! दस जमातें पढा परदेस जाकर ट्रेनिंग की और चटाक स नौकरी भी मिल गयी। बडे बडो के घर बैठे रहे पर खडकू का नौकरी लग गया और नही तो अब सरकार को गाली दते हैं। खडकू की किस्मत से चिढत थे, साली मिबर तो कहता था खडकू का लडका नौकरी तभी लगा जब वह चमार था। हरिजनो को सरकार पहले नौकरी जो दती है। क्या बात है ! यानी उसका रोशन खुद इतना लायक नही था कि नौकरी लग जाता सब गांव वाले चिढत थे और क्या ?

पर जस ही अलग बैठा सबको शांति मिल गयी। सबके कलेज ठण्डे पड गए। राशन कहा अलग होता, बुरा हो इस औरत का जो उसको ब्याही। मास्टर की औरत भला ससुर खडकू ठूठ से घर रहती। खडकू चमडे का काम करता है गवार अनपढ है। घटिया खाता है, घटिया पहनता है नगी जाघें रखता है। रोशन से बडा प्यार था पर क्या करे खडकू। कहा दिए पूरे पडने बहू ने। अलग कराकर ही छाडा अब रहते हैं उस झोपडे मे। बहू तो बहू, वह तो है पराई जाई अब रोशन भी कौन बात करता है। आया पूछने हाल भी कि बापू न बीमार है कोई दवा दारू चाय पानी की जरूरत हो तो लाऊ। जिसके लिए इतनी दुख-तकलीफ सही वही विपत काल म बात करने से कनी काटे। अरे भलेमानुस औरत से ही डरता है तो चोरी छिपे ही दो बाल बोल जाता मैं कौन जबरदस्ती कुछ माग लेता चलो भला करें राम जी !

पवाधा वैद आज फिर घर पर नही था। पवाधी अल्ले धागे से एक औरत का तरेइया बाध रही थी। खडकू को थोडा सा इतजार करना पडा। जब तक उसकी बारी आई भीड बढने लगी थी। काफी फैल गया था बुखार। गाव में गाव म पवाधी का सीजन अच्छा चल रहा था। दान दक्षिणा और यश सम्मान दोनो मिल रहे थे। उपकार का रौब ऊपर से।

वह वापस चला घर पहुचने की जल्दी थी। मास्टर का बूट पर सामने लमा पुरोहित दिख गया। क्यो न उसके यहूडे पर जाकर सिद्ध बाबा दियोटिया से

बीमारी छूटने की म नत मना ले। जेब खाली है ता क्या हुआ प्रिमे मास्टर के बूट की कीमत आ जाने पर रुपया दो रुपया दक्षिणा बाद म चढा देगा। पवाधी के टोटके बख्शिश का इकरार भी तो बाद के लिए ही हुआ है। सौ काम पडते है। लामे पुराहित से। सबसे बनाकर रखना काम तो आता ही है। विर्त्तेदार आदमी है खडकू जमाने से बनाएगा तो रोटी खाएगा वह थहडे की ओर चल दिया।

कहते है पण्डित भृगनाथ भूत प्रेतो से चिपटी ओपरी बीमारियों का अच्छा इलाज करते हैं। दूर दूर स आते है लोग उनके यहा इलाज के लिए। इतवार-मगलवार को तो मेला लगा रहता है। मरते मरता को भला चगा किया है। पागलो को दो मिनट मे ठीक करते हैं उनसे भी वह तावीज क्यो न ले ले। चादी के जतर मे मढवा कर गले म डाल लेगा। भूत प्रेत, डायनें हवा म इधर-उधर घूमते रहते है। दिखाई नही दते। जभी ता यह बीमारिया पीछा नही छोडती आज जमाने का जहा देखो कोई न कोइ बीमार है। हर घर मे यही हाल। देखा नही पवाधी के कितनी भीड हो गयी थी। सुबह सवेरे भृगनाथ के तो जाने बारी मिलेगी भी कि नही। पर वह तावीज लेकर ही जाएगा, चाहे दिन भर इतजार करना पडे, बूट बनन का इकरार टूटता है तो टूटे भाई, जान है तो जहान है।

सिद्ध बाबा दियोटिया की मूर्ति पर मत्था टेककर जब वह लौटा ता पाव अपने आप भृगनाथ के घर की ओर मुड गए, भीड बहुत थी दुनियाभर के दुखिया की, भीड मे खडकू भी समा गया। इस भीड मे सिर्फ तीन घटे मे मिल गया कागज पर लिखा तावीज। उसने इसे गमछे मे बाधा और चल दिया चादी के जतर म मढवाने के लिए गाठ खाली थी। डोडू सुनार उधार नही करता बाद म मढवा लेगा। प्रिमे मास्टर के बूट के पैसे आ जाने पर फिलहाल काले कपड़े म सिल लगा इसे। पण्डित ने ऐसा ही तो कहा है। भीगने से बचाना है नहाती बार उतार लिया करेगा।

देवी को कढाह प्रसाद बाद म चढाएगा जरा गाठ मे पैसा तो आ जाए। हा, अपने पीर को मनाना जरूरी है। वह गढे की ओर लपका पीर बडा दयालु है गरीबो दुखियो की मदद करता है सब बीमारिया हर लेता है।

सामने रोशन का झोपडा दिखा। वाह रे रोशन! तेरी खातिर क्या कुछ नही सहा, पर तू इस औरत के लिए छोड गया मुझे। पर राम जी सबके हैं पीर सिद्ध, देवी, पवाधी, भृगनाथ सभी रूपो मे वही हैं रामजी तेरा भी भला करें तेरी औरत बनी रहे, कही ।

इतने इलाज इक्टठे करवाए अब रहेगा तरेइया। रास्ता न दिखेगा इस राकुडस को।

वह वापस घर पहुचा तो दिन ढल चुका था। शरीर कमजोरी अनुभव कर रहा था, भूख जोरो स लग रही थी।

कमजोर तन नीद म जो डूबा तो बिना हिले डुले उसी स्थिति मे उठा। गन्द-गन्दे सपने होते रहे। रात भर प्रिम मास्टर का बूट रात भर आखों स आझल न हुआ। आज तो बना ही लगा चाहे जो हो ।

जल्दी जल्दी नित्य कम से निवत्ति पाकर वह बूट बनाने बैठ गया, हाथो मे कमजोरी थी, पर बूट का बनाना ही विकल्प था।

साझ ढल आई, आसमान पर बादल छा गए, देखते ही-दखते तज हवा चलने लगी।

खडकू को ठण्ड महसूस होने लगी और जल्दी ही वह कापने लगा।

सामान वही छोडकर भीतर सारी ओढनियो स तन ढापकर सो रहा बुखार से कापते तन म आग की लपटें और शीत की लहरें इकट्ठे उठ रही थी, रोशन का ख्याल दिमाग म बार बार कौंध रहा था।

प्रिय मास्टर का बूट, बाबा दियोटिया की दक्षिणा, पीर का रोट, देवी का कढाह प्रसाद, पवाधी का अल्ला धागा और भू गनाथ का तावीज सब ख्यालो से ओझल थे।

हवा तूफान की तेजी से दौडने लगी थी। बाहर एक आवारा कुत्ता जोर जोर से भौंक रहा था। आंधी के एक तज झोके ने आधी भिडे किवाडो को चटाक से खोल दिया।

खडकू बेहोशी की सी दशा मे चौंका, "तू आ गया रोशन ?"

तूफान की ध्वनि से डर कर कुत्ता दौडकर खडकू की चारपाई के नीचे सू सू करता हुआ दुबक गया।

खडकू मरियल व कापती आवाज मे 'रोशन' 'रोशन 'पुकारने लगा।

एन्काउन्टर

लोहे के फाटक को लाघकर बाइ ओर बडे साहब का आलीशान दफ्तर था। इसके इद गिद साहब के सहायको के कमरो का जमघट सामन्तवादी प्रथा के प्रतीक मे फैक्ट्री के भीतर जाने वाले हर आदमी का स्वागत करता था। दाइ ओर माल का स्टॉक करन के लिए गोदाम और जरा हटकर ताजा निकले माल की पासिग परेड के लिए एक बडा सा हाल कमरा बना हुआ था। कमचारियो के सिवाय आग जाने की अनुमति किसी को नही थी, क्याकि फैक्ट्री की भारी मशीनरी इसके आगे ही थी। यानि यह वर्जित क्षेत्र था। धुआ उगलते विशाल भवन और चारो ओर ऊची दीवार पर काटदार बाड लगी थी।

काम का विभाजन कई डिपाटमेंटों म था। हर किसी के हवाले कोई-न कोई काम तो था ही, पर इसे कौन कितनी ईमानदारी और निष्ठा से करता है, यह व्यक्तिगत और सवथा अलग बात है। फैक्ट्री मे एक इसपेक्शन डिपाटमट था, जो विभि न सैलो म बटा हुआ था। इसके टाइम-कीपिग सैल मे लगभग दो वष पूव मेरी नियुक्ति एक टाइम कीपर के रूप मे हुई थी।

बतौर टाइम कीपर के मेरे पास ऊघते रहने अथवा कभी कभी वकरो को आखें दिखान के अतिरिक्त कुछ भी काम नही था, पर वकर लोग आखें दिखाने का मौका भी बहुत कम देते ह। वे प्राय ठीक समय पर आते और जाते थे। वैस काम करने के लिए आज इस देश मे कौन किसी को मजबूर कर सकता है। बडी विचित्र ड्यूटी थी। काम नही होन के कारण जिन्दगी पहाड हो गई थी। दिन की ड्यूटी हाने पर ता किसी तरह गप्पें वगैरह हाककर समय व्यतीत हो जाता था, लेकिन नाइट ड्यूटी का महीना आते ही जैसे साप सूघ जाता था। ऐसे वक्त ड्यूटी रूम की चिटकनी ब द कर बडे से खाली मेज पर सो जाने के अतिरिक्त ऊब ही ऊब थी।

इस ऊब से मुक्ति पाने के लिए कभी कभार बॉयलरो पर काम कर रहे वकरो के इसपेक्शन के लिए भीतर गहराई तक चक्कर काट आता था। पाच दस वकर प्राय मशीनो की कणकटु ध्वनि की परवाह किए बिना किसी स्थान पर एकत्र होकर

अपनी मजबूरियो और साहब लोगा की ऐयाशी का रोना रो रहे होते थ। मैं भी समस्याओ मे शामिल हो जाता था। मजदूरो के जीवन की कठिनाइयो और मूवमट म सम्मिलित होने का समय मुझे यही मिला। यही से मैं वकर यूनियन था। अधिकतर लोग अनपढ थ और अपना पक्ष ही मजदूरो का प्रवक्ता बन बैठा से पहुचाने के लिए मुझ जैम नेता की तलाश म रहत थे। प्रभावशाली ढग

पर यह नतागिरी बडी जोखिमभरी थी। अधिक प्रभावशाली और नेतागिरी के लोग इस फैक्ट्री स रातारात गायब हो जाते थ या एन्काउन्टरो म मारे जात थे। तीन चार वप म पाच सात बार ऐसा हो चुका था। फिर भी इससे पलायन करना मुझे कायरता अनुभव हुई और मैं अपने भीतर की सारी बहादुरी का समट उग्र से उग्रतर होता गया।

जनवरी की ठिठुरती रात्रि का अढाई के लगभग का समय था। मैं अपने ड्यूटी रूम के दरवाजे की चिटकनी बन्द कर हीटर की गर्मी म ऊघने लगा था। फैक्ट्री के भीतर कही पर जोर का पटाखा हुआ। मशीनरी की साधारण ध्वनि स यह पटाखा एकदम अलग था। पटाखे के बाद सँ ऐं एँ ' की तीव्र ध्वनि लगातार आने लगी। फिर वर्करो के जार जार से चिल्लाने का स्वर सुनाई दने लगा। एसा प्रतीत हुआ कि कोई दुघटना घट गई है। मैं हडबडाकर उठा और दरवाजा खोल कर फक्ट्री के अन्दर की ओर दौड पडा।

बायलर न० 81 फट गया था और गणेशी का खून स लथपथ शरीर फश पर पडा तडफ रहा था। कुछ वकरो ने चिन्तातुर मुद्रा मे उस घेर रखा था और दूसरे कुछ ऊचा ऊचा बोलकर अपनी अहमियत जता रहे थे। कुछ भावुक किस्म क लोगो की आखें पथरा सी गयी थी।

हैड मैकेनिक ने जरा सभलकर सुझाया, "गणेशी को अस्पताल ले चलो।'

जैसे चेतना लौटी हो इस एक वाक्य से ! वकर लोग हरकत मे आ गए। गणेशी क अर्ध-जीवित शरीर को अहात से बाहर लाया गया।

मेरे साथ साथ चलत हैडमैकेनिक आतकित सा कह रहा था, "लाखो का घोटाला हुआ है बाबू ! न जाने किसने कितना खाया है इस खरीद मे। अभी तो गणेशी ही जा रहा है, भगवान न करे किस किस की बारी आने वाली है "

समय व्यर्थ के वाद विवाद या सूचनाए एकत्र करन का नही था। हैडमैकेनिक ने मुझे बडे साहब को सूचना देने के लिए कहा और स्वय काफिले को शीघ्र चलने का निर्देश द वह उनके साथ चला गया।

बडे साहब की कोठी फैक्टी के गेट से कुछ ही दूर थी। मेरे परो मे बिजलियां लगी हुई थी। कोठी के चारो ओर बनी अभेद्य दीवार का एकमात्र गेट बन्द पडा था। वहा तैनात चौकीदार गेट के भीतर की तरफ स्टूल पर आखें बन्द किये

समाधिस्थ था। उसकी गर्दन कभी कभी झटका खाकर एकदम नीचे आने की कोशिश करती, पर वह जरा सी आखें खोलकर पुन मुद्रा स्थिर कर लेता था।

मैंने 'चौकीदार' 'चौकीदार' दो बार कहा तो वह जाग गया। जैसे ही उसकी सम्पूण चेतना लौटी, वह खडा होकर अपनी रायफल सभाले ड्यूटी देने लगा, जैसे क्षण भर पहले उसे नींद न लगी हो। गदन एकदम ऐसे अकड गई, जैसे उसमे लचक हो ही नही।

"क्या है ?" रोबीली आवाज मे उसने पूछा।

"दुघटना हो गई है, बॉयलर न० 81 फट गया है और गणेशी " मैं एक ही सास मे कहे जा रहा था, पर उसने टोक दिया, ' फैक्ट्री है, ऐसी घटनाए तो घटती ही रहती हैं। क्या कोई नई बात हुई ?"

मुझे अचरज हुआ कि वह इतने बडे हादसे की पूरी रपट सुने बिना ही उसे दुघटना तक मानने के लिए तैयार न था।

फिर भी साहस बनाए रखकर मैंने कहा, "गणेशी की हालत बहुत खराब है, तुम अगली कायवाही के लिए साहब को सूचना दे दो।"

वह भडका, "सवेरा नही होगा क्या ? अभी साहब सो रहे होगे कैसे जगा दू ?"

मुझे जैसे बिजली ने छुआ हो। बडे साहब की जीवन रक्षा करते करते उसके भीतर की मानवता निर्जीव हो गई थी। मै अब याचना पर उतर आया, "गणेशी की हालत बहुत चिन्ताजनक है।"

पर उसने पुन मेरी भावना को नकारते हुए उत्तर दिया, "दो तीन घण्टे इतजार कर लो।"

"तीन घण्टे तक तो शायद गणेशी मर चुका होगा ?"—मने मन ही मन सोचा।

मैंने पुन जिद की, "मैं स्वय साहब को जगा लेता हू, तुम गेट तो खोल दो।"

चौकीदार अधिक कड़ा पड गया। रायफल सभालते हुए गरजा, "मेरे जीते जी तुम साहब के आराम मे खलल नही डाल सकते।"

तीन चार रोज पहले साहब का परिवार दिल्ली गया था—ऐसी कोई स्मृति मेरे मस्तिष्क-पटल पर कौंधी और पिछले कल बीरबल कह रहा था साहब की कोठी के गेट के भीतर जो कार गयी थी, उसमे एक जवान, खिली हुई रमणी थी ऐसे मे साहब बेआराम कैसे होग ! गणेशी जैसे कई लोग रोज मरते है, जीते जी, घटनाओ मे, दुघटनाओं मे, उग्रवादियो की गोलियो से कौन किसी को बचा सकता है ?

मैं लौट आया, गणेशी को लोग अस्पताल ले गये थे। शायद उन्हें आभास था कि साहब तक बात पहुचना इस आधी रात के तीसरे पहर म नामुमकिन है। जिस

रास्ते पर गणेशी के रक्त की बूदें टपकती गयी थी, उसी पर मैं चलता रहा, असख्य विचारो का जाल दिमाग म समेटे।

वर्कर यूनियन के पदाधिकारी अस्पताल पहुचन शुरू हो गये थे। सबके चेहरो पर मौत का सन्नाटा था। कुछ ऐसी खामोशी, जो प्राय मरघट पर हुआ करती है। इस समय मुझे लगा कि अस्पताल भी आधा मरघट ही होता है।

गणेशी की पत्नी विलाप करती हुई आई, 'अब हमारा क्या होगा ?' उसके इन शब्दो ने पिघले शीशे की तरह मेरे कानो मे प्रवेश किया, भले ही उसकी सारी लाचारी और बेचारगी इस वाक्य मे सिमट आई हो, पर गणेशी के प्रति पत्नी की जो सवेदना और कसक मेरे अनुमान मे उभरनी चाहिए थी। उसका मुझे अभाव दिखा, तो क्या गणेशी की पत्नी उसे सिफ अपने जीवन निर्वाह से अधिक कुछ नही देखती है ?

गणेशी बेहोश पडा था। कभी-कभार उसके मुह से वेदना की एक सद आह अनायास निकल जाती थी। नाइट ड्यूटी पर तैनात नर्स ने काफी पूछताछ करने के बाद कुछ कागजो का पेट पूरा किया। सरक्षक के बतौर हैड मकेनिक के हस्ताक्षर करवाए और डॉक्टर को बुलाने चली गई। पौन घण्टे के बाद डॉक्टर अनमना सा, हाथ मे स्टेथस्कोप दबाए आ गया।

गणेशी का उपचार तीन दिन तक चलता रहा,' मगर होश उसे एक बार भी नही आया। और तीसरे दिन वह मर गया।

अन्तिम सस्कार के दौरान गणेशी के शरीर स उठ रही लपटो ने मेरे जहन म कितनी ही स्मृतियो को सजीव कर डाला।

अजीब ही किस्म का प्राणी था यह गणेशी भी ! हर समय कुछ-न कुछ करता ही रहता था। उसने कभी परवाह नही की थी कि बाकी लोग अपने ड्यूटी टाइम म गप्पें लडा रहे हैं और वह अपने बायलर से जूझ रहा है। साथी वर्कर भी उसे प्राय कह जाते थे, "गणेशी ! हमारी मशीन का भी ध्यान रखना," और गणेशी उत्तर मे सिर हिला देता। लगता उसके मुह मे जुबान ही नही है। टाइम कीपर के रूप म जहा बाकी वर्करो को यह याद दिलानी पडती थी कि काम का समय हो गया है, वहा उसे स्मरण करवाना पडता था कि काम का समय समाप्त हो गया है। तब बेहोश सी मुस्कराहट म मुस्कराकर वह चल देता था।

बॉयलर न० 81 हाल मे ही खरीदा गया था पर, अकेला नही। इसके साथ खरीदे जाने वाले बायलरो की कुल सख्या बीस थी। कुछ मशीनरी और भी खरीदी गयी थी। मशीनरी का एक छोटा-सा पुर्जा भी खरीदना हो तो मैनेजिंग बोड खरीद की फाइल को छ सात विशेषज्ञो क पास घुमा चुकन पर बडे साहब की अनुमति मे आडर देता है। इस बार भी यह परम्परा नही तोडी गयी थी, पर लगता था कुछ गोल माल हुआ जरूर। हैड मैकेनिक ने इन पर काम करन स

इन्कार कर दिया था। उसका कहना था कि यह 'अन्सेफ' है, मगर बोर्ड ने बड़े साहब की सिफारिश पर उससे जवाबतलबी लेकर उसे नौकरी से बर्खास्त करने की धमकी दी थी। वह बेचारा जिजीविषा की यातना से मजबूर अपने काम पर लौट आया था।

भ्रष्टाचार के आरोप तो यूनियन ने भी इस खरीद मे लगाए थे, लेकिन प्रमाणित कुछ न था। खरीद म कागजो का पेट पूरा था। शक की कही कोई गुजाइश नही थी। इस प्रकार आरोप निष्प्रभावी होकर रह गए थे और आवाज दब गयी थी।

गणेशी बेचारा सेफ और अन्सेफ मे अन्तर नही जानता था, इसलिए वह पहला शिकार हुआ था।

अन्तिम सस्कार से निवृत्ति पा लेने के बाद तुरन्त यूनियन की बैठक आफिसस क्लब के सामने के अपन छोटे-से कार्यालय मे आरम्भ हुई। दोनो के बीच एक पक्की सडक है। इस सडक पर साहब लोगो की कारें आ-आकर रुक रही थी, जिनमे से रग बिरगी पोशाको मे उनके परिवारों के सदस्य उतरकर टिड्डीदल की तरह क्लब की ओर बढे जा रहे थे। सडक के दोनो किनारा पर वकर लोग मायूसी की छाया चेहरो पर लिये बेताबी से यूनियन के निणयो की प्रतीक्षा कर रहे थे। आशा और निराशा के मध्य सडक पर अजीब से अविश्वास और यान्त्रिक जीवन का आभास हो रहा था।

दूसरे दिन एक जुलूस निकाला गया और एक दिन की साकेतिक हडताल रखी गई। अन्तत जुलूस रली म बदल गया। वक्र नेताओ ने मैनेजमेंट बोड, तकनीकी विशेषज्ञो और बडे साहब की विक्रेताओ के साथ मिलीभगत का आरोप लगाकर इस खरीद मे हुए घोटाले का पदाफाश करने का भरसक प्रयास किया तथा न्यायिक जाच की माग दुहराई। साथ ही इस बायलर क साथ खरीदी गयी मशीनरी पर काम न करने का ऐलान किया।

भाषणकताओ मे मैं भी था। इस दुघटना के दिन बडे साहब के चौकीदार द्वारा किए गए व्यवहार का वणन जब मैंने अति भावुक स्वर म किया तो मजदूर लोग उत्तेजित होकर शम शर्म के नारे लगाने लगे। मैंने रमणी की उपस्थिति की सूचना की व्याख्या कर बताया कि इस सब अनैतिकता का सीधा सम्बन्ध मशीनरी की उस थोक खरीद के साथ हो सकता है। मेरे भावपूण भाषण पर श्रोताओ मे खलबली मच गयी। इस उत्तेजना म प्रशासन के खिलाफ नारे भी लगे।

रात को यूनियन की पुन मीटिंग हुई, जिसम हडताल का प्रारूप तैयार किया गया।

दूसरी रात मैं अपनी ड्यूटी पर अपने केबिन मे बैठा सोच क महीन धागो म उलझा हुआ था कि अचानक पुलिस के दो सिपाही एक हैडकास्टेबल के नेतृत्व मे

मेरे सामने आकर यमराज के दूतों की तरह खड़े हो गए। मैं हक्का बक्का होकर उन्हें देखने लगा।

"तुम गिरफ्तार किये जाते हो।" रोबीले अन्दाज में हैडकांस्टेबल बोला।

मैंने संयत रहने के प्रयास में पूछा, "किस जुर्म में?"

"यह तुम्हें थाने में चलकर बताया जाएगा।"

"कोई वारंट वगैरह?"

हैडकांस्टेबल कड़का, "वारंट भी आ जाएगा। बड़ा कानून झाड़ता है। लगाओ हथकड़ी साले को।"

मेरे सामने विकट स्थिति थी। हथकड़ी का मेरे बाजू में चढ़ जाना अवश्य ही मौत का वारंट था। हो सकता है आज रात को एन्काउन्टर में, मेरे मारे जाने की खबर अखबारों के कार्यालयों में भेजे जाने की तैयारी पूरी हो चुकी हो। यानी मृत्यु और जीवन का प्रश्न था और जीने की मेरी चाह बलवती थी।

एक सिपाही ज्योंही हथकड़ी लेकर मेरी ओर बढ़ा, मैं हरकत में आ गया। मैंने बाज की तरह उस पर झपटकर उसके हाथ से हथकड़ी छीनी और हैडकांस्टेबल के मुंह पर जोर से दे मारी। वह भीषण चिल्लाहट के साथ जमीन पर बैठ गया। जब तक दोनों सिपाही संभलते, मैं दौड़कर केबिन से बाहर निकल गया और दरवाजे को बाहर से बंद कर राहत की सांस ली।

बाजी अब मेरे हाथ में थी। मैंने हल्ला मचाना शुरू किया तो वर्करों का जमघट लगने लगा। मैंने अपनी सारी दास्तान सुनाई। अधिकतर लोग आर्थिक परेशानियों में दबे चुप रहने वाले थे। दो चार नेता किस्म के वर्करों के आ जाने पर केबिन का दरवाजा खोल दिया गया।

सिपाही सहमे से बाहर निकले। भीड़ में से एक अगुआ ने पूछा, "यह क्या ड्रामा है?"

दोनों सिपाहियों की दृष्टि पल भर को एक हुई। हैडकांस्टेबल ने सहमे स्वर में उत्तर दिया, "हम इस आदमी को गिरफ्तार करने आये थे पर इसने हमसे हाथापाई की। बड़ा खतरनाक आदमी है।"

भीड़ में से किसी ने टोका, "वारंट है?"

हैडकांस्टेबल ने सहमी दृष्टि से भीड़ की तरफ देखकर उत्तर दिया, "बड़े साहब का हुक्म था कि वारंट की कोई जरूरत नहीं बाद में जारी करवा लिया जाएगा।"

"गिरफ्तारी क्यों की जा रही है?" एक अन्य व्यक्ति का प्रश्न था।

"इससे बड़े साहब को जान का खतरा था।"

मैं चिल्ला पड़ा, "यह झूठ है। मुझे मार डालने की साजिश रची गयी थी, ताकि आतंक फैले और वर्करों की हड़ताल कामयाब न हो।"

वर्कर लोग काम पर लौटने लग पडे थे। उनकी मुद्रा स्वत आतकित होने का उद्घोष कर रही थी।

एक वकर न निणायक स्वर मे कहा, 'बिना वारट किसी को हिरासत म लेना अपराध है " यह कहकर वह भी चला गया। पुलिस वाला के सामने मैं अब पुन अकेला था।

हैडकास्टबल अब गिरफ्तार तो नही कर सका, पर चलत चलते बोला, 'हडताल से अपना हाथ खीच लो, यह साहब का हुक्म है। नही ता नतीजा बुरा होगा "

अपने केबिन मे घुसत हुए मुझे लगने लगा कि मैं अपनी ही आस्था के साथ सघष कर रहा हू।

चक्रव्यूह

मैंने रूमाल से चश्मे को अच्छी तरह पोछ पुन आखा पर चढ़ाकर देखा, नीरु ही थी। इन पाच वर्षों म रूप रग काफी निखर आया था। शरीर पर मांस की मात्रा बढ़ गयी थी। यू पहचान पाने मे कोई कठिनाई नही हुई, तनिक सा अविश्वास का भाव जगा था।

वह अकेली नहीं थी, दो हमउम्र सभ्रात महिलायें और कॉलिज की पचीस तीस लडकिया का एक समूह उलझा बिखरा साथ चल रहा था। हिडिम्बा मन्दिर के द्वार तक पहुचत उनम अधिक बिखराव आ गया था।

पाच सात लडकियो का एक ग्रुप अपन कैमरो के उपयोग म देवदार के जगल म एक ओर सरक गया। दूसरा मैडमों के साथ मन्दिर के द्वार पर देवी का इतिहास जानन के लिए आतुर हो गया। शेष यौवनाए सुनहरी सपनो सी यहा-वहा छिटक गयी।

नीरु की पहचान पा लन पर एव अपनी प्रखर उत्सुकता व आवेश की तृप्ति के लिए मैं जानबूझ कर लापरवाह सा दिखन की मुद्रा बना मदिर के समीप सरकने लगा।

मदिर के इतिहास की व्याख्या कर रहे आदमी पर मुझे गुस्सा आया। वह सक्षिप्तता के महत्व से अनभिज्ञ था।

अपनी निरपेक्षता के प्रदर्शन के लिए मैं गगनचुम्बी शिखरो पर निगाह जमाने लगा। आसमान पर घने बादल छाए हुए थे मानो पानी बरसना ही चाहता हो। धुध दूर दूर तक छान लगी थी।

"अरविंद! तुम?"

मरे शरीर का हर रोम सिहर उठा। मैंने चौंकने के उपक्रम म देखा, नीरु उसी चिर-परिचित हास से ओत प्रोत थी। आस पास जगल मे उमडती लडकियो का खिलखिलाता स्वर झकृत हो रहा था जसे पहाड की छाती से झरने फूट पड़े हो।

"नीरु! तुम यहां हो?"

"पहले प्रश्न मैंने किया है।"

मैंने हाथ जोड दिए, "लो, नमस्ते मै पहले कर रहा हू।"

वह हस पडी, "तुम अभी तक नही बदले।"

"मै परम्परावादी तो कभी रहा ही नही।"

और अब हम दोनो हस पडे।

उसने बताया कि बी० एड० करने पर कुछ दिन तक वह शिमला के एक स्कूल म पढाती रही थी फिर शादी हो जाने पर वही लडकियो के कालेज मे प्रोफेसर हो गई है। "और तुम ?" उसका प्रश्न था।

'जैसूर के स्कूल मे पढाता हू।'

तभी एक लडकी हवा के से प्रखर वेग स आकर "मैडम ! आपको स्नैप के लिए बुला रहे है," कह गयी और उसी शीघ्रता मे लौट गयी।

नीरू ने गम्भीरता ओढकर कहा, 'अरविन्द ! समय की कमी के कारण कुछ भी बात न हो सकी। अभी वशिष्ठ और मडी विजिट करना है। शाम तक तो मनाली लौट आयेंगे। फुर्सत हो तो शाम का वही मिले।"

'मैं तो खाली ही खाली हू।"

"तो कहा मिलोगे ?'

"शिराज म आ जाना। बस स्टाप के साथ ही है दाइ ओर।'

"सात बजे तक पहुचने की कोशिश करेंगे। घटा आध घटा आगे पीछे हो सकता है।"

मेरी दृष्टि अनत तक उसका पीछा करती रही।

नीरू !

यह उस मरीचिका का नाम है जो मेरे प्यासे मन को सतत तीन वर्षों तक छलती रही थी। और शन शनै सिमटती शून्य मे विलीन हो गयी थी।

जब यूनिवर्सिटी मे हिन्दी साहित्य म एम० ए० करने के लिए म शिमला गया तो आर्थिक तगी से दो चार होना पडा था। वहा का खच पाच सौ से कम न बैठता था, जबकि घर स मुझे तीन साढे तीन सौ रुपया से अधिक नही आते थे। प्रोफेसर राघव के स्नेह के कारण कनल रामेश्वर दयाल के बेटे को ट्यूशन पढाने का एक काय मिल गया। बाने सौ रुपये पर तय हुई थी। लडका किसी पब्लिक स्कूल की आठवी कक्षा म पढता था।

कनल को सेना से रिटायर हुए तीन वष हो गये थे। बेटा प्रतीक्षोपरान्त पैदा होने के कारण जरा जिद्दी स्वभाव का था।

स्वय कनल से मेरी मुलाकात एकाध बार को छोडकर लगभग नही के बराबर थी। प्रथम साक्षात्कार म उन्होने शिक्षा के महत्व पर प्रचुर प्रकाश डालकर लडके

को शिखर पर ले जाने का आह्वान किया था। इसके बाद मैंने उन्हे प्राय घर पर नही पाया। माल रोड, गोल्फलिक, ऑफिसर्ज क्लब आदि उनकी कितनी ही व्यस्तताए थी।

यही नीरु ने आधी बनकर मेरे अकेलेपन मे प्रथम कदम रखा था।

चाय लाने का काम नौकर करता था, मगर कुछ दिन के अतराल म नीरु लाने लगी। पढाने की गहन व्यस्तता क मध्य प्याला थामते प्राय हमारी दृष्टि एक होने लगी थी।

उस समय वह बी० ए० फाइनल म थी और सयाग से हिदी साहित्य भी उसके विषया म एक था। विजय की पढाई के बीच ही वह किताब लेकर मेरे पास आकर बठन लगी। सहानुभूति का पात्र न बनने की इच्छा हृदय म सजोए भी नीरु की मम्मी की सहानुभूति उसी के कारण मुझे अच्छी लगन लगी।

बी० ए० कर यूनिवर्सिटी मे हिदी साहित्य मे उसका प्रवेश लेना सयोग नही था मुझस जुड रहने की अन्तर्प्रेरणा थी।

यूनिवर्सिटी और घर के उन्मुक्त वातावरण ने हमे स्वच्छदता देकर एक दायरे म जकड लिया जो समय के साथ सिमटा जाता था। हर वक्त गप्प, चुहलबाजी, घूमना और वार्तालापा म हम खो से गए। प्रकटतया नीरु की माना और उनके माध्यम से पिता से हमारी घनिष्ठता छिपी नही थी पर कभी कोई विरोध की स्थिति या वैसी किसी दशा का आभास मात्र भी कभी मुझे नही हुआ। नीरु अपने भविष्य के प्रति स्वतत्र थी।

इस बीच मैं विजय को लगातार पढाता रहा।

नारकण्डा का वह ट्रिप! रगीन स्वप्ना मे चहकते युवा युवतिया अपने मनपसद घेरो म सिमटे टहलने निकले थे।

'अरविन्द! आज की डिबेट मे तो तुमने समा बाध दिया था।"

नीरु के शब्द ऊचे पेडो से झरती वायु-तरगो मे मिश्रित होकर मधुर सगीत मे परिवर्तित हा मेरे कानो मे बजने लगे थे। रैस्ट हाउस मे हुई डिबेट म बोलते समय मुझे लगा था जस कोई शक्ति भीतर ही भीतर अपने पूरे आवेग से उमड रही हो। नीरु की उपस्थिति के कारण, उसका अस्तित्व मेरे लिए वरदान प्रमाणित हुआ था।

नीरु के मुख स फूटे इन शब्दों से मैं रोमाचित हो उठा 'यह सब तुम्हारी प्रेरणा से हुआ, नीरु!"

वह खिलखिलाई, 'तुम अब काफी खुशामद करन लग हो" और तितली सी मैं उसे पकड पाने के प्रयास मे उडा भरने लगा।

काफी दूर दौडने के बाद वह जगल की घनी छाह मे बैठ गई। मैं पास पहुचा

तो हाफने स्वर मे बोली, "एक बात कहू, अरवि द ! बुरा तो न मानोगे ?'

"बुरा ? अरे, कहकर तो देखो ।"

"यही कि तुम पाखडी हो ।"

"पाखडी ?"

"हू "

"कैसे भला ? '

"बहुत आसान है" मुस्कराते हुए उसने उत्तर दिया, "समाजवाद पर भाषण झाडते हो और "

' रुक क्यो गई ?" मैंने उत्सुकता से कहा ।

' जनाब सिर्फ रोटी की बात करते है। प्रेम, प्यार, घर-गृहस्थी की नही ।"

मैं गभीर हो गया, "नीरु ! रोटी के साथ मैं जीवन सहजता के साथ जीना चाहता हू, कृत्रिमता की गध से दूर ।"

वह भी गभीर हो गई, मुझे तुम्हारा यही सीरियस रूप सबसे अच्छा लगता है ।" और मेरे करीब आकर अधिक सट गई ।

मैने उसे अपनी बाहो मे भीच लिया । जाने कैसा उद्वेग उठा कि क्षण भर को हम खो गए । भीतर के सारे भाव जगत् मे एक जबरदस्त भूकम्प आया, पर सप्रयास उसे थामकर मैने नीरु को झझोडा, "आओ, नीरु चलें ।"

अपनी अधमुदी पलको को वह कैसे खोलना चाहकर भी खोल न पा रही हो ।

"कहा ?" उसकी कापती आवाज लगा किसी अधेरी गुफा से आ रही थी ।

"नीरु !" मैने उसे सचेत किया, 'लौटने का समय हो चला है, आओ चलें ।"

साथ साथ सटे हम चल दिए, पर लग रहा था जैसे किसी लम्बी सुरग मे चल रहे हो । अपने अतर के अकेले पथिको से कितने पास, पर कितनी दूर ।

बस मे सीट पास ही पास मिल गयी ।

लिफ्ट के पास उतरते हुए नीरु ने कहा, ' अरविन्द, यही उतर जाओ । एक कप कॉफी "

'शिमला कॉफी हाउस' की कॉफी से वास्तव मे हम दोनो का अपनत्व-सा था ।

शाम गहराने लगी थी । मन राहत के लिए आतुर था । बालूगज उतर कर हास्टल पहुचना अधिक आरामदेह होकर भी मन की तृप्ति के लिए एक कप कॉफी का लोभ मैं सवरण न कर सका ।

उतरकर हम लिफ्ट की ओर बढ गए ।

काफी हाउस के द्वार पर यशवन्त दिख गया, आज काफी सजा-सवरा था। औपचारिक हैलो हलो के साथ, वाद विवाद का समय न पाकर सिर्फ कहने भर के लिए मैंने उसे कॉफी लेने के लिए कहा तो वह इ कार न कर मुस्कराता हुआ हमारे साथ भीतर चला आया।

नीरु क साथ एकात म कॉफी पी सकने की आरामदेह स्थिति चूक गयी। भीतर ही भीतर मैं बेचैनी महसूसने लगा।

पर इसस अधिक बेचैन करने वाली स्थिति तब पदा हुई, जब आमने सामने की कुर्सियो पर बठे नीरु और यशवत सहज होकर बतियाने लग। मेरे दिल म एक कसक जागी, पर सहना ही पर्याय था।

नीरु का घर छाडकर जब मैं मालरोड होता हुआ समरहिल [illegible] ता मन भीतर ही भीतर एक गहन निज [illegible] ारो ओर एक घना जगल उसे घेरे हुए था [illegible] इस चक्रव्यूह म मैं बोझिल कदमो से बढ़ा चला जा रहा [illegible]

पम्मी अभी स्कूल स नही लौटा था। बाहर बरामदे म जगल पर पैर टिकाकर मैंने कुर्सी से पीठ को सहारा दिया और धुध म नजरें गडा कर देखने लगा। व्यास नदी के इस छोर पर समानान्तर दौडती देवदार के वक्षो को घनी पाच स परे दष्टि आझल हो रही थी।

इस बार बरसात की छुट्टियो मे अनयास मनाली आने का कायक्रम बन गया था। पिता ने मेरी शादी के लिए अच्छा दान दहेज कैद करवा रखा है। मेरे सिर हिलाने भर की देरी है इस खिजलाहट स बचने का उत्तम ढग था कि दूर रहा जाए।

कुछ दिन पूर्व अनुपम का पत्र मिला था। वह चाहता था कि यह दो महीने मैं उसके पास मनाली आकर विताऊ। वह अकेला अकेला महसूस करता है। मनाली म छुट्टिया सर्दियो मे हाती हैं।

मेरे अतरग मित्रो के वृत म केवल अनुपम ही ऐसा है जिसके पास मैं दो महीने बिता सकता हू। बाकी स्मतियो पर कोहरे की घनी परत जमी हुई है। सभी लोग हमारी तरह एकाकी और एकागी तो नही है, अपनी घर गृहस्थियो म उलझे हैं।

फिर जैपुर की यादें, दो महीने के लिए ही सही मैं भूल जाना चाहता था। सामाजिकता का तग दायरा काटने दौडता है, वहा तो जिन्दगी का बोझ मात्र ढोकर रह जाता हू। इतने सारे लोग हैं, एक दूसरे म सटे हुए पर भीतर से कितने दूर। दो चार भोंडे मजाक, एकाध अश्लील गप्प और एक दो निम्न स्तर के लतीफे बस। किसी का दु ख दद सुनने की फुसत नही, उसम भागीदार तो बनना

क्या। घने बीहडो मे भटकते प्राणियो से भावशू य लोग रोटी रोटी रोटी जैसे खाने के लिए ही जिंदा है लोग।

मनाली स्टेशन पर बस रुकी तो सवारिया हडबडी मे उतरने लगी। मैंने भी अपना बेग सभाला शीघ्रता मे उतरने का प्रयास किया तो एक मामूली सी कील म उलझकर कमीज फट गई।

सिगरेट के धुए से बनते छल्ले कुछ दूर जाकर शू य म विलीन हो रहे थे।

"मुझे लगता है तुम्हारा ध्यान बटा हुआ है। लो मैं चुप हो जाता हू।" मैंने नीरु की अ यमनस्कता देखकर कॉफी की घूट भरते हुए कहा था।

"तुम अपना भाषण जारी रखो, मैं सुन रही हू।" शरारत स मुस्कराते हुए उसने कहा, "और यह सब अब अच्छा भी लगता है।"

कुछ दिनो से उसका दिमाग बटा हुआ था। मुझे लगता था, जैसे वह दोहरे झूले मे झूल रही हो। मुझे छोडना उसे गवारा न था और कुछ अधिक पाने की हसरत भी थी, जो मेरे पास अनुपलब्ध था। फिर भी मैंने सकेत मात्र ही किया, "नीरु! क्या यह तुम्हारे अन्तर्मन की आवाज है या कि ?"

वह हस पडी, 'बातें बनाना कोई तुमसे सीखे।'

"नीरु! मैं बात नही बना रहा हू आदमी का स्वभाव एक कठिन पहेली है। उसे समझने के लिए कई बार अपने आप से भीतर ही भीतर लडना पडता है।"

वह सहसा गम्भीर हो गयी, "कभी कभी तुम बडी अजीब बातें करने लगते हो। मुझे बहुत डर लगता है।"

"इसमे डरने की कोई बात नही है, नीरु," मैंने व्याख्या की, "जीवन म कडवी सच्चाइयो से डरा नही जाता है।"

"तुम कहना क्या चाहते हो?"

"नीरु! प्रेम अ धा होता है। यह आस्था और घृणा एक साथ पैदा करता है और शायद अभी तुम यह न जान पाओगी कि प्रेम एकाधिकार भी चाहता है। अगर यह बलिदान कर सकता है तो बलि ले-दे भी सकता है।"

"अरवि द! मैं तो इतना समझती हू कि प्रेम शाश्वत होता है।"

मैंने सिर हिलाया, "यही आदर्श मृगजल की तरह हमारे मन को ठगते फिरते हैं। शायद आदर्शवाद से चिपक कर यथार्थ से पलायन करने से हमें कोई आतरिक सांत्वना मिलती हो।"

'विश्वास तो करना ही होता है।"

"विश्वास के लिए ही पूछ रहा था कि तुम अन्तर्मन से कह रही हो या सिर्फ 'फ्लैटरी' करती हो।"

"हा बाबा अन्तर्मन से कह रही हू," कॉफी का अन्तिम घूट भरकर उसने कहा। पर, लगा जैसे उसके मस्तिष्क पर कुछ बोझ है।

जादू की चढाई चढते देवदार के वक्षों से ठडी वायु के बावजूद उसका मुख का रग सुर्ख हो गया था और सास फूलने लगी थी।

मैंने मजाक किया, 'तुम पैदल चलने के नाकाबिल हो, नीरु!'

वह मुस्कराई। दुपट्टे से ढके सिर के नीचे सुख चेहरा जैसे किसी सुन्दर चौखटे मे सिमट आया हो। "तुम तेज भी तो बहुत चलते हो।"

गांव का आदमी हू न! कठिनाइयो म कैसे पला पढा हू। अब आदत सी हो गई है।'

जाखू मन्दिर क आस पास हरियाली का फैलाव था। प्यार करने वाले जोड़े यहा वहा अपनी छोटी सी दुनिया म खोए थे। बहुत ही सीमित घेरा, पर कितना विशाल! हर किसी का अपना रग-ढग, अपना चुनाव, अपना आलोक ससार से बेखबर!

'तुम बहुत थक गई होगी। आओ, कहीं बैठते हैं। मन्दिर से लौटते वक्त मैंने कहा।

'सचमुच, अरविन्द! मैं बहुत थक गयी हू।' उत्तर दिया, "पैदल चल पाना मेरे लिए बहुत कठिन है।'

'मेरा जीवन तो शायद पैदल ही सफर है।" मैं सोच रहा था, तो क्या पर मस्तिष्क ठहर गया।

हम पास पास बैठ गए। सरसराते गगन चुबी पेड, हवा से झूलती टहनिया, हरी घास और नत सी धरती। एक दूसरे के बिलकुल पास हम दोनो सटे हुए। उसका सिर करीब करीब मेरे कन्धो को छू रहा था। बालो की गध मेरे नथुनो म फडकती सुगधित बौछार का चुभन मादकता से झुला रही थी। कितना भव्य आलोक था कितना स्निग्ध स्मित हास तैर रहा था उसके अधरो पर।

एसे क्या देख रहे हो!'

हू कुछ नही!'" मैं चौंक गया, फिर सचेत होकर कहने लगा, 'नीरु! क्या यह जो मैं देख रहा हू कोई सपना तो नही?

"कैसा सपना?" उसके खिलते अधर थके थके से जैसे बोल पाने म असमर्थ थे। उसकी थकान भापकर मैंने कहा, 'नीरु! तुम जरा बैठो, मैं दाने-वाले से कुछ मूगफली ले आऊ!"

दाने बेचने वाला, मन्दिर के दूसरे छोर पर ग्राहको से घिरा खडा था। वह पैकेट थमाता, नोट पकडता, फिर रेजगारी वापस कर अगले ग्राहक की ओर पलटता। मुझ लौट जाने की अकुलाहट के बावजूद प्रतीक्षा करनी पडी।

लौटने म पन्द्रह मिनट लग गए। उसके पास पहुचने से पहले ही नीरु की खिलखिलाहट कान के पर्दे से टकराई। अब वह अकेली नही थी, यशवन्त उसके पास बैठा था।

'हैलो," पास पहुचते ही यशवन्त ने कहा, "कामरेड ! आज जाखू टैम्पल का आनन्द लूट रहे हो।"

मेरा चेहरा कैसा हो रहा था, नहीं मालूम। हा, सिर के भीतर तनाव से नसें खिच रही थी। हैलो कहकर पास आकर बैठ गया। मैं मूगफली के दो पैकेट लाया था। एक खोलकर जमीन पर रख दिया "लो चबाओ।"

नीरु दाने उठाने लगी तो यशवन्त ने कहा "हाऊ सिल्ली ! कौन चबाए इतने सख्त दान ठहरो ! मेरे पास खाने के लिए जरूर कुछ होगा, अभी कार म से लेकर आता हू।"

वह चीते की सी फुर्ती से भागा।

मेरे खोए मे, तनावयुक्त चेहरे को देखकर नीरु बोली "तुम एकदम उदास क्यो हो गये ?"

"नहीं तो !"

मेरी आवाज मे उत्साह के स्थान पर शायद आक्रोश उभर आया था और शायद उसने यह भाप लिया हो, ' परेशानी का एकदम कोई ऐसा कारण तो नही है फिर "

तभी यशवन्त लौट आया। उसके हाथ मे टिफिन था। बहुत से सामान से भरा। मीठा, नमकीन, शुष्क सभी कुछ खाद्य ! मूगफली समेट कर मैने जेब म रख ली। वे खाने लगे। यशवन्त का आग्रह मुझे काच के टूटे टुकडे सा लग रहा था। मैं इतना उचट गया कि खाना तो दूर, वहा बठ पान में असमथता अनुभव करन लगा था।

जाने वह समय कितनी यातनाए देता बीता। मुझे अपनी उपस्थिति मूगफली सी अकिंचन दृष्टिगोचर हो रही थी।

"चलने का इरादा है क्या ?" यशवन्त के प्रश्न के साथ जैसे मेरी चेतना लौटी हो, "हा, अब तो चलना ही चाहिए।"

"आओ, चलते है," फिर जैसे अपनी समथता जता रहा हो, ' मै मारुति लाया हू।"

"मुझे पैदल चलना अधिक अच्छा लगता है। आखिर घूमने का मजा तो आना ही चाहिए।" कहकर मैंने नीरु के चेहरे को गौर से देखा।

"चलो न अरविन्द ! कार म चले चलते है मैं काफी थक गई हू।" मैने शुष्कता से उत्तर दिया, "तुम जाओ मैं पैदल ही आऊगा।"

उसने गौर से मेरा चेहरा देखा और चल दी।

मैं उन्हें जाते देखता रहा। यशवन्त स्टीयरिंग पर बैठा, नीरु दूसरी ओर से चढकर बगल म बैठी। इजन स्टार्ट हुआ और मारुति घुमावदार सडक पर फराट भरने लगी।

मैं पगडडी की ओर चढ़ चला।

"उस राज तुम कार म क्यो नहीं आए थे?" नीरु ने शिकवा किया, "आखिर यशवन्त तुम्हारा दोस्त है और तुम्हारी रुखाई स उसे बहुत दुख हुआ।"

"मुझे पैदल चलना अच्छा लगता है," मैंने उत्तर दिया, "फिर हम घूमने ही तो निकले थे।"

"यदि कोई सुविधा मिल जाए जो उसका उपयोग कर लेने म क्या बुराई है। मैं तो बचपन से ही पैदल न चलने की आदी हू।"

"और मुझे कारो मे घूमने का रत्ती भर भी शौक नहीं है।"

शायद मेरे मन की कुठा बोल रही थी। नीरु ने उसे महसूसा हो। 'तुम्हारे व्यक्तित्व मे यह सकरी गली देखकर जी घबरा उठता है।"

"नीरु! एक बात कहू बुरा तो न मानागी?"

उसने प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा, "कहो।"

"प्रेम एकाधिकार चाहता है।"

वह गहर मे खो गई, 'प्रेम और दोस्ती म अन्तर नही होता?'

"होता होगा। मैं उसे नही स्वीकारता"

उसके चेहरे पर एक दढता मुझे स्पष्ट दिखी। निणय की दढता। पर बाद म भी उसकी आत्मीयता मे कोई अन्तर आया हो, ऐसा मैंने कभी नहीं देखा, पर वह यशवन्त की ओर लगातार झुकती गई।

मैं अभिमन्यु की तरह स्वय को एक ऐसे चक्रव्यूह मे फसा पाने लगा, जहां से बाहर आने का माग सुलभ नहीं था। मोह और वितृष्णा ने जैसे मुझे घेर लिया था।

स्कूल स आते ही पम्मी चहकने लगा था, "अरे अरविन्द! तू यहां अकेला बैठा क्या कर रहा है! देख तो सही बाहर मौसम कितना रोमांटिक है आज!"

उत्तर मे मैंने सिगरेट का गहरा कश खीच कर हवा मे उछाल दिया।

यार बडा सीरियस है" कुर्सी पास खींचते हुए बोला, "आज कही घूमने नही निकला?'

बोझिल स्वर म मैंने कहा, "गया था हिडिंबा की ओर। कुछ देर पहले लौटा हू।"

"हाऊ ब्यूटीफुल!" वह उछल पडा, "फिर भी तेरा चेहरा उतरा हुआ है।"

मैंने दाशनिक भाव से उत्तर दिया, "पम्मी! कभी-कभी अतीत की परछाइयां भीतर उथल पुथल मचा देती हैं।'

"अतीत की " वह बडबडाया, "परछाइया तो क्या नीरु।"

"हा ! हिडिंबा मे मिली थी आज।"

"वह यहा ?"

"कॉलेज की लडकियो के साथ टूर पर आई है। शिमला के किसी गर्ल्ज कॉलेज मे प्राफेसर हो गई है।

"प्रोफेसर ?" एक गहरा प्रश्नचिह्न अनुपम के चेहरे पर उभरकर सिमटने लगा, "होगी क्यो नही ? एक बडे सरकारी अफसर की बहू स्कूल मास्टरी करेगी क्या ? समर्थ का नहीं दोष गुसाईं !"

मैंने लम्बा सास खीचा। सामने पवत शिखर पर जमी बफ साफ दिखने लगी थी।

"छोड यार भाग्य भी कोई चीज है।"

"मैं भी अब भाग्य पर विश्वास करने लगा हू।"

'अरविन्द ! अब तू एक काम कर, शादी कर ले।"

मैं हस पडा, "हम दोनो इकट्ठी करेंगे। किन्ही दो अनाथ बहनो के साथ बेहतर हो आज ही हिडिंबा मे जाकर पाणिग्रहण कर लें।"

वह भी खिलखिला पडा।

सहसा चुप्पी छा गयी, मानो दोनो ही अपने भीतर के निजन मे लौट गए हो। फिर पम्मी ने बाहर आकर सन्नाटा तोड दिया।

"अरबिन्द ! एक बात बता। क्या तुझे लगता है कि नीरु तुझे सचमुच प्यार करती थी ?"

मैं गहरे म उतर गया। 'तुम्हे लेकर मन मे जो व्याकुलता सी होती है, इसे अरविंद, यदि तुम प्रेम कहते हो तो अवश्य ही मैं तुम्हे प्रेम करती हू।' ऊचे तरु कितनी मधुर साय साय से झकृत हो रहे थे उस समय ! मन भाव विह्वल होकर नाच पडने को आतुर था।

"क्या सोच रहा है ?"

"पम्मी ! यह सच है कि नीरु के दिल मे स्नेह का भाव तो मेरे प्रति कभी जरूर था। समय की गति के साथ यशवत मुझ पर हावी होता गया। मैंने इस प्रक्रिया को देखा परखा और समझा है।"

"उसका प्रेम सच्चा नही था।"

"प्रेम सच्चा झूठा नही हुआ करता पगले ! कई बाहरी कारण इसे प्रभावित करत है।"

"यानी यशवन की फैमिली बैकग्राऊण्ड, उसका सामथ्य और ऐशो आराम की जिंदगी ने नीरू क प्रेम को ही प्रभावित कर दिया ? '

"मुझे तो अधिक यही लगता है।"

"हो सकता है", अनुपम ने मिर हिलाया, फिर व्यग्य पर उतर आया।

"उसका प्राणप्रिय पति कहा है आजकल ?"
"यह तो मुझे भी नही मालूम ।"

यशवत रावत का विद्रूप सा चेहरा नजरो म घूम गया । शिमला की शीतल सडको स उसका रत्ती भर भी सामजस्य नही बठता था । उसके लिए न ता वहीं तप्ति थी, न शांति, निरतर अपन भीतर वह एक उमस का अनुभव करता भटकता रहता था । उन दिनों वह यूनिवर्सिटी मे अखिल भारतीय विद्यार्थी परिपद का अध्यक्ष था और उसका पिता प्रांतीय सरकार की मशीनरी के महत्वपूण पुर्जे क रूप म स्थापित एक उच्चाधिकारी । यशवत को लेकर मि० रावत प्राय परेशान रहते थे । उनका उच्च पद व तत्कालीन सरकार उसे इस प्रकार क विरोधी विचारो की अभिव्यक्ति की स्वतत्रता कैसे दे सकते थे । पर यशवत क लिए फक नही पडता था ।

उस समय जब विद्यार्थी-वग अपन बूटो को पालिश स चमका रहा हाता व अपन कपडो की सिलवटो को लाड्रिया मे गम प्रेस दिलाकर शरीर को सजान का यत्न कर रहा होता ता वह बिना कघी किए बालो और उलझी मूछो को मराडता फटी चप्पलो के बल अपनी परिपद के विचारो के प्रचार प्रसार म व्यस्त पुरातन सास्कृतिक विरासत के पुनर्जीवन की उद्घोपणा कर नवीन मूल्य युक्त समाज के गठन की बातें करता था ।

मेरा परिचय उसस मालरोड के 'शिमला कॉफी हाउस' मे हुआ था । कॉफी के एक गम कप पर उसी की-सी भाप लिये हमारी बहसें लगातार चलती थी । वह मार्क्स के द्वद्वात्मक भौतिकवाद से बहुत खीजता था । मेरे तर्कों से हारकर भी उसने कभी हार स्वीकार नही की जैस सघप ही उसकी जीवन पद्धति बन गयी थी ।

पर मरी कठिनाई गभीर थी । मुझे यह मालूम नही पडता था कि आखिर वह किस माग पर चलना चाहता है । मार्क्स का घोर विरोधी, क्राति के नाम से चिढने वाला और गाधी के हृदय परिवतन मे घोर अनास्था लिये हुए, वह था तो फिर यही आकर मेरा सोच ठहर जाता । पुरातन पथी सस्कृति के पुनरुत्थान की उदघोपणा मुझे नकारा लगती थी, या शायद मेरी समझ से बाहर थी । यशवत मुझे अजीब से द्वद्वा का पुज दिखता था ।

उद्दाम नदी के दो द्वारो से हम निरतर बढते रहते । एक उत्तर मे दूसरा दक्षिण मे । कही कोई एकता सामजस्य, समन्वय या समझौता नही न ही ऐसी गुजाइश ही फिर भी निकट आ पाना जितना कठिन था, उससे अधिक कठिन था दूर जा पाना । रोज की अनिर्णीत बहसो के बाद मैं हास्टल लौट आता और वह अपने घर ।

इतनी असमानता होते ही हमम एक बहुत बडी समानता थी, नीरु को लेकर ।

जब भी वह हमारे बीच म होती तो हमारी बहस म वह उग्रता न आ पाती थी, उस ऊचाई तक हाथ न लहरा पाते और न ही वाणी का तीखा स्वर काफी-हाउस मे बैठे सभ्रात घरो के प्रेमी युगलो की मुद्रा मे विघ्न उत्पन्न कर पाता, जिससे, बैरे को हमे शात रहने का स्मरण करवाना पडता।

अकेले मे, चिंतन करने पर मुझे अपनी यह मन स्थिति बडी हास्यास्पद लगती थी। आखिर नीरु की उपस्थिति हमारे अतर म कौन सा नपुसकता का भाव भर देती है, जिससे हमारे विचार भीतर ही भीतर बफ हो जाते है।

साहस तो मुझे बहुत बटोरना पडा था, पर मैं प्रश्न की अपरिहायता को कैसे नकारता, "नीरु ! तुम मुझे व यशवत म स किसको अपना जीवन साथी के रूप मे चुनोगी ?'

वह इतने जोर से हसी जैसे मेरे प्रश्न मे विमूढता के अतिरिक्त कुछ भी न हो। शायद मेरा हीनता बोध उसके सामने स्पष्ट उजागर हुआ हो।

मैं दर तक निर्वाक उसकी उन्मुक्त हसी को ताकता रहा, फिर कुछ सयत होकर उसका उत्तर आया, "अरविंद ! लगता है, म उलझ गयी हू। दिल और दिमाग मे द्वद्व चल रहा है। हृदय तुम्हे त्यागना नही चाहता और दिमाग के पलडे म यशवत भारी पडता है।"

मैं विमूढ हो गया, पर साहस न खोया। आदशवादी उपन्यासों के नायको की तरह मैं यशवत के लिए कोई त्याग नहीं कर सकता था और हृदय के जिस भी पोर स मैने उसे समझा था, वह भी मेरे लिए ऐसा वैसा त्याग करने वाला नही था।

इस दुधष सघष मे हमारे क्रातिकारी विचार धूल धूसरित हो गए।

यशवत का कायाकल्प हो गया था। अब वह सम्भ्रान्त अधिकारी का बेटा था। उसके बाल खुशबूदार शैम्पू से धुले होते, चेहरे पर चिकनाहट का लेप हो गया और कपडो म एक अजानी सी सुगन्ध तैरती रहती। विद्यार्थी परिषद तो अब निर्जीव पाषाण प्रतिमा थी। लाल मारुति म यूनिवर्सिटी आता जाता था। प्रात -साय नीरु भी आने जाने म खुलकर उसकी कार का प्रयोग करने लगी थी।

मर लिए एम० ए० करते करत शोध की स्थिति आ गयी थी। उस प्रेरक शक्ति का शोध जिससे नीरु परिचालित थी। और मेरा शोध पूरा होने तक नीरु का द्वद्व परिणाम पा गया। दिमाग ने दिल पर विजय पा ली थी। यशवन्त के पास भौतिक सुख-सुविधाए चरणो मे लोटती थी। दूसरी ओर मैं था, ग्रामीण, निम्न मध्यवर्गीय परिवार का कुलदीपक, जो उच्च आकाक्षाए पाले यूनिवर्सिटी की चौखट म छटपटाता जिजीविषा की यातना भोग रहा था।

नीरु पर लगातार सहजता की ओर मुक्ते जाने वाली प्रवृत्ति ने विजय पा ली और मैं बाजी हारकर उग्र हो गया। अन्तमुखी होकर लेखनी का सबल थाम लिया।

पढाई पूरी कर चुकने पर, बेकारी मे अहर्निश जूझते, घर पर मुझे उसकी शादी का काड मिला था। पगडडियो का पैदल यात्री राजमार्ग की कारो के स्वप्न मे राजपथ पर भटकता कुचला गया था।

कैफे शिराज म बैठे भीतरी गर्मी को गम कॉफी से काटने के प्रयास म चुस्कियां लेते हुए मैंने चुप्पी तोडी, "नीरु, आज शिमला कॉफी हाउस की याद ताजा हो रही है।"

उसने लम्बी सांस ली।

"क्या रखा है अब उन यादो मे ?"

"मेरे लिए तो उनमे जीवन है।"

"पिंजरे म जकडे पंछी को यह याद दिलाने से क्या फक पडता है कि कभी वह आकाश मे स्वच्छद उडता था।"

लबी सास लेने की अब मेरी बारी थी।

'यशवत कहा है आजकल ?'

' शिमला मे ही ! एच० ए० एस० ऑफिसर है "

"नीरु तुम यशवत के साथ खुश हो न ?"

"खुश हाने या न होने से क्या फक पडता है ! आखिर निबाहना तो है ही "

"ऐसी कौन सी समस्या है जा निबाहने की नौबत है ?

उत्तर चेहरे को सहेजन के प्रयास म उसने उत्तर दिया, ' समस्याओ का अन्त कहा है विवाह हो जाने पर पत्नी शो-पीस हो जाती है और पुरुष के लिए प्रेमिका खोजना कठिन भी तो नही "

"तो क्या यशवत ?' मेरी जीभ पर कडवाहट उभरने लगी थी।

' खैर ! छोडो यह सब", उसने टाल दिया, ' तुम बताओ, कहीं 'सैटिल' हुए या नही ?"

"नौकरी लग गयी है, फिर भी किसी लडकी न अभी पसद के काबिल नही समझा।"

वह मुस्कराई, ' तुम चाहे कितने ही प्रगतिवादी बनो, बदले नही !'

"*नीरु ! सच कहती हो तुम। हम कहा बदलते हैं बदलता तो ससार है।"*

और उसने हसकर बात पलट दी, ' यहां कब आए।

"सप्ताह भर पहल, अनुपम के पास ठहरा हू।"

'अनुपम ? वही तुम्हारा क्लासफलो ?"

"हा, वही यहा पढाता है।"

"अकेला है ?"

"ठेठ ! बिल्कुल मुझ सा" हसी का फव्वारा धीमा पडते ही मैं मूल विषय पर आ गया, "नीरु, मैं सोचता था तुम जीवन मे इतने अच्छे स्थान पर पहुच गयी। धन, मान, मर्यादा, प्रतिष्ठा, ऐश्वय सभी कुछ ! पर देख रहा हू, भीतर ही भीतर तुम्हें कुछ सालता है।"

जैसे वह गहरे सोच म उतर गयी। मैं गौर से उसके चेहरे पर चढत उतरते भावो को पढता रहा। नि श्वास छोडकर जब वह बोलने लगी तो लगा आवाज कही दूर से आ रही है, "अरविंद ! यह मान मर्यादा सुख ऐश्वय सब छलावा है। मनुष्य का सूनापन ही दूर न हो तो जीवन मे इन सब का कुछ भी महत्व नही रह जाता। यशवत अब मि० रावत हो गए हैं। उनके पास मेरे लिए समय नही रहा।"

फिर एक लम्बी सास खीचकर आगे बोली, "कई बार जल्दबाजी म किए गए निणय का नतीजा अच्छा नही निकलता।"

"नीरू !" मैंने थूक निगलकर उत्तर दिया, "तुम्हारा चुनाव शायद सही था, पर समय के थपेडो ने तुम्ह व्यथ घाव दिए। फिर इस बात की क्या गारण्टी थी कि मैं भी तुम्हे पाकर यशवत की राह पर न चल पडा हाता।"

उसने पुन नि श्वास खीचा।

मरे मुह की कडवाहट कसैली हो गयी थी।

वशिष्ठ के वशज

सरकाघाट से आने वाली पहली बस को लगभग डेढ बजे शिमला पहुचना चाहिए। यह जानते हुए भी कि भारतीय ट्रेनो और बसो पर समय की कोई पाबन्दी नही है, मैं पौने एक बजे सजौली से बस स्टड की ओर चल दिया। समय से पाच मिनट पूव मैं वहा पहुच गया।

शिमला के तग बस अड्डे पर वाहनो का जमघट चीटियो की तरह उमड रहा था। अड्डे से जुडी कार्ट रोड पर ट्रैफिक की चीं पौं और डीजल जलने से उठे हुए धुए की घुटन से मैं शीघ्र ही तग आ गया, पर मजबूरी थी। ताऊजी पहली बार शिमला आ रहे थे। उनका इतजार हर कष्ट के बावजूद करना था।

साढे तीन बजे तक मेरी बेसब्री का पैमाना छलक गया। सरकाघाट से आने वाली बस का समय चौथी बार पूछने तक ट्रासपोर्ट के बुकिंग क्लक का पारा नब्बे डिग्री पार कर गया और झल्लाहट म गदन ऐंठ गई। उसने मुझे डांटा कि वह ज्योतिषी तो नही है जो बसो के आने जाने का ठीक समय बता सके।

कहते है प्रतीक्षा की घडिया लम्बी होती हैं पर आज मैं जान पाया कि यह ऊबाऊ भी बेहद होती है। बार-बार कार्ट रोड पर दृष्टि उठते उठते आखें थकान महसूसने लगी थी। जरा सी इजन की घरघराहट इस निणय का सयम तोड देती कि मै अब उस ओर नही ताकूगा। सारा आत्मबल झल्लाहट म सिमट गया था।

यह जानलेवा प्रतीक्षा पांच बजे समाप्त हुई। छत पर सवारियो का जमघट गन्दगी पर सिमटे मच्छरो सा लग रहा था। पन्द्रह बीस होतो लोग 'बाबूजी सामान' 'बाबूजी सामान' चिल्लाते बस की धीमी हुई चाल के साथ दौडते जा रहे थे। पर उसमे सामान कम आदमी अधिक थे। बेजान सामान ढोने वाले होतो लोग चेहरे लटकाए किसी और बस की आशा म पीछे मुडने लगे। एकाध दो के शायद टोकन लग भी गए। भीड भनभनाहट म अलबत्ता शीघ्र छट गयी।

ताऊ जी थके टूटे से अपना मटमैला थला पकडे नीचे उतरे। इसकी टेढी सिलाई चुगली खा रही थी कि यह किसी ट्रेड दर्जी का सिला हुआ नही है, बल्कि खुद ताई के हाथो का तयार किया हुआ है। वे बहुओ पर भी बहुत कम एतबार

करती है।

पाव छूकर मैंने थैले की ओर हाथ बढाए, पर उन्होने मना कर दिया। इसे औपचारिकता जान मैंने आयासपूर्वक इसे खीचना चाहा तो उसे मेरे हाथ थमाते हुए ताऊ जी ने हिदायत दी, "तेरी ताई ने इसमे कुछ खाने का सामान डाल रखा है। अछूतो से बचाकर चलना।"

बस म बैठी भीड मे कितने लोग अछूत होगे, यह तो शायद ताऊ जी भी नही जानते थे। पर इतना तो निश्चित है कि इतने लोगो म सभी ब्राह्मण नही हो सकते।

तभी मुझे बस का कडक्टर जगतराम दीख गया। वह मेरा स्कूल के दिनो का सहपाठी था। दसवी कक्षा मे पढते एक बार उसने मुझे भी कबड्डी खेलने के लिए मजबूर किया। पहली ही रेड म प्रतिद्वद्वी टीम के सब खिलाडियो ने दबाचकर जब मुझे जमीन पर गिराया तो मेरे दात और नाक से एक साथ बहना खून हस्पताल जाकर ही बन्द हो सका था। गनीमत दात टूटन से बच गए। मेरे इस खून का बदला लेने के लिए धुरधर खिलाडी जगतराम ने दूसरे दिन प्रतिद्वद्वी टीम पर कडे प्रहार किए पर तैश म आकर अपना दात तुडवा बैठा।

वह मेरी ओर लपक रहा था और टूटे दात का द्वार आज भी बिना किवाडो से उसके हसते मुख पर किसी गुफा के तग दरवाजे सा लग रहा था। दिमाग से सकेत प्राप्त कर जब तक ताऊ जी के थैले को मैं जमीन पर रखकर उसस मिलता, तब तक जगतराम मुझसे लिपट चुका था।

उसस मुक्ति पाकर जब हम चले तो मन कचोट रहा था। जगतराम हरिजन है। उससे छूकर थैले म पडा खाद्य ताऊ जी के खाने लायक नही रहा था। यदि वह वास्तविकता उन्हे बता दी जाए तो ताई की सारी मेहनत खाई म उतर जाती है। नही बताता हू तो उनकी धर्मभ्रष्टि का पाप मुझे वहन करना पडता है। कभी बात खुल जाने पर तो कही का न रहूगा। अतिम विचार अधिक प्रबल था। यह सर्वथा दूसरी बात है कि अनजाने म यह थैला उससे पहले ही बस मे बैठे बैठे छू गया हो। इस धर्म सकट म उलझे कदम बोझिल हो रहे थे। तभी ताऊजी के शब्द खोजी कुत्ते की तरह लपके, "इस कडक्टर का घर कहा है?"

अपनी दाढी के तिनके को खुजलाते हुए मैंने उसके गाव का नाम बता दिया 'बराट?" वे तनिक चौके जो अभिनय नही था। इलाके के जाने माने पुरोहित घर घर स वाकिफ है 'वह तो ज्यादातर नीची जातियो का गाव है कुर्मी, वढियाडे डुमण, जुलाहेना, छिबे हो पाच सात घर राजपूत मियो के भी हैं— इसके बाप का नाम तुम्हें पता है?"

बाप का नाम तो मुझे याद नही था। क्लास म कभी अध्यापक की अनुपस्थिति म गाली गलौच करने के लिए यदि जाना भी होगा तो अब स्मृति स बाहर हो गया था। पर ताऊ जी का अन्वेषण उसके बाप के नाम का नही, इस माध्यम से

से सीमा का मुआइना कर रहे थे।

उसके अधकट झूलते बालों पर से फिसलती उनकी नजर जमीन पर टिक गयी थी। ताऊ जी प्राचीन संस्कृति के सच्चे समर्थक हैं। नारी को पर्दे में संकोच से सिमटी सिकुड़ी देखने के अभ्यस्त ही नहीं, प्रबल पक्षधर हैं। मेरी उसस घनिष्टता उन्हें दो टूक नहीं भाएगी, भले ही इसकी अभिव्यक्ति में समय कुछ अधिक लगे। सीमा से इस समय मैं मुक्त होना चाहता था, पर उसने उन्हें 'विश' करने के बाद कॉफी लेने का आग्रह किया।

मेरे इन्कार पर वह मुझे प्रायः घसीटने लगी थी। विचित्र परिस्थिति थी, एक ओर सीमा और दूसरी ओर ताऊ जी की भावना मैंने सीमा को समझाने का प्रयास किया, 'ताऊ जी कॉफी नहीं पीते '

'अरे ? छोड़ो बहानेबाजी '

मैंने हठात अपना हाथ छुड़ाने का प्रयत्न कर कहा, "ताऊ जी होटल रेस्तरां का पानी तक नहीं पीते " लगा मेरी आवाज किसी सुरंग से आ रही थी।

वह एकदम हताश होने की सीमा तक चुप हो गयी। खिला हुआ फूल क्यों क्षण भर में मुरझा गया हो, फिर थूक निगलते हुए मरियल स्वर में बोली, 'तो एक पान ही हो जाए ''

मैंने ताऊ जी की तरफ देखा। वे जैसे किसी कल्पनालोक में थे। कोई नई दुनिया, जहां मनुष्य नहीं मनुष्यों की तरह के कुछ जीव रहते हैं।

सीमा तीन पान ले आयी। ताऊ जी उसे नहीं छुएंगे, यह जानते हुए भी मैंने दो पान पकड़कर बोझिल कदमों को गति देने की कोशिश की।

भीतर ववंडर मचा था। जाने कौन सा नाटक उनके भीतर आकार पा रहा हो। इसी उहापोह में चलते उनका प्रश्न की तरह का एक वाक्य जो न प्रश्न था न उत्तर ही आया, "मुन्नू! पहले तो मुझे भ्रम हुआ कि यह लड़का है पर आवाज से पहचाना यह लड़की थी "

मैंने हुंकार भरी।

सजौली बाजार से नीचे उतरने वाली पगडंडी बहुत ही तंग और टेढ़ी मेढ़ी है। जरा-सा पांव फिसल जाने से दस बीस मीटर गहरे किसी देवदार के दरख्त से लुढ़कता शरीर अटक जाने के बाद ऊपर आ पाना मैदानी तो क्या किसी पहाड़ी आदमी के लिए भी छत से टंगी खिचड़ी हो सकती है।

मैं थैला बॉलकोनी में रख ताला खोलने के उपक्रम में था, तब तक ताऊ जी मकान, वातावरण और प्रकृति का प्रथम निरीक्षण पूरा कर चुके थे।

नए मालिक का यह पुराना मकान काफी बड़ा है। ऊपर की मंजिल के साथ जुड़े पहाड़ की तरफ दो छोटे छोटे कमरे इसी नए मालिक ने यह मकान खरीदने के बाद जोड़े थे। मेरे पास इनमें से एक किनारे वाला कमरा है जिसका किराया

चुकाते मुझे दो साल हो गए थे।

दरवाजा खुलते ही कमरे के भीतर का गध का झोका, जो मेरे नाक म रचा बचा सा ह ताऊ जी की नाक मे टकरा उनकी गदन का रक्त नद्रे न्द्रिय घुमा गया। मरे भीतर कुछ पिघलता पदाथ दिमाग से उतरकर दिल म समा गया।

दरवाजे के सामने की दीवार से एक चारपाई सटी थी, जिसके आग बाइ तरफ एक स्टोव व खाना पकाने क कुछ बतन फश पर पडे थे। बाद तरफ नहान व बतन साफ करने क लिए कनक्रीट स बना छोटा सा मेंड वाला चौकार चौखटा सा बना हुआ है। स्थानीय भाषा मे इसे 'चला' कहते हैं। कमरे के बीचा बीच दो फोल्डिग कुर्सिया सजी थी। यानी कमरा ज्वा-ट बैडरूम, ड्राइगरूम, किचन व बाथरूम सभी काम दता था।

नए बने इन दो कमरो के आगे लकडी की एक तग बॉलकोनी है, जिसमे मरे जैसा दुबला पतला आदमी चल फिर सकता है। दोनो कमरो की बनावट कुछ एसी है कि दूसरे कमर मे कोई आवारा बिल्ली छाटी-सी छलाग भर तो अपनी चारपाई पर चित्त लटे इसका सहज आभास हा जाता है। पडोस मे रघुनाथ आवटा रहते हं जिनकी नीद चीटी की आहट से टूट जाती है। उनके सा जान क बाद मुझे किताब के पना का इतनी धीरता स बदलना होता है, ताकि वे ध्वनि उत्पन्न न कर सक।

ताऊ जी को मकान पसन्द नही आया। आ भी नही सकता था। अपन गाव की खुली भावो हवा उन्मुक्त वातावरण और खुले घर का अभाव उन्ह ही क्या मुझे भी सताता है पर मजबूरी म दिन काट रहा हू। सात सौ रुपयो क वतन स पौने दो सौ पहले ही मकान किराए की भेंट चढ़ रहे हैं।

उनके लिए चाय की चिंता म मैं गिलास उठाकर चला पर पैरो के ब्रक दर वाजे पर चरमरा गए। होटल का दूध व बहुत महगे।

"बठ जा मुन्नू ?' ताऊ जी की सहृदयता की परतें खुल रही थी, अहे स ला तेरा डेरा दूर है हमारा कैंप कहा लगेगा ?'

वे शिमला एक सेमिनार के सिलसिले म आए थे।

कहा का न्यारा है ?"

' विधान सभा भवन।"

सजौली स इसकी दूरी पाच किलोमीटर तो होगी, पर मैंन भरसक सहजता स दो तीन किलोमीटर बता दी।

साझ ढल आई थी और आतें कुलबुला रही थी— 'आपके खान क लिए क्या बनाऊ ?" मैं पूछा।

घर से आइ रोटियो के अछूत हो जान का स्मरण दिलाकर ताऊ जी ने उन्ह वही फेंक जान की ताकीद की ताकि वे अन्य खाद्यो को खाने अयोग्य न बना दें।

फिर ताई की पाक कला पर प्रकाश डाला गया अपनी भैंस के शुद्ध दूध म गुथे आटे की मीठी रोटिया थी, पर वह डुमण जो छू गया मुन्नू ? तू खाना कहा बनाता है।"

मैंने फश पर पडा स्टोव सकेत से दिखाया।

वे जरा सहम गए, "मैं तो मिट्टी के तेल पर पकी रोटी नही खाता फिर डालडा म लोग गाय की चर्बी मिला रहे हैं "

चूल्हे का प्रबन्ध न था, न हो सकता था। असमजस मे मैने सारी स्थिति बयान कर दी, तो उन्होंने निर्देश दिया, 'कोई बात नही तू अपने लिए खाना पका ले, दो-तीन दिन यू ही काट लूगा घर जाकर रोटिया ही तो खानी हैं दो की जगह चार खा लूगा।"

उनकी हसी के साथ मेरे गिर्द एक मुसीबत घिर गयी। ताऊ जी शिमला आकर भूखे रहे, मैंने दूसरी तजबीज पेश की, 'रोटिया हीटर पर सेक देता हू "

उन्होंने हुकार भरी।

"और सब्जी को तडकूगा नही ' क्योकि देसी घी का मेरे पास कोई प्रबन्ध नही था।

स्वीकृति म मौन था, पर चेता कर बोले "बच्चा! तू जानता है कच्चे पाजामे के साथ बनाई गयी रोटी मैं नही खाता।'

इसम कोई शक नही था आजीवन ताऊ जी ने जो खाना खाया उसे या तो वे स्वय पकाते थे अथवा लहगा पहने कोई भी घर की स्त्री। दूसरा विकल्प नही था।

मेरे पास झीना-सा लाल रग का एक अगोछा है, जिसम पिछली बार घर से आते वक्त ताई ने रोटिया बाधकर मुझे दी थी। ताऊ जी के किसी यजमान के घर से दान स्वरूप आया होगा। दरवाजा बन्द कर तथा भीतर अच्छी तरह कुडी लगा कर मैं सिफ नहाती बार पहन लेता हू।

मैंने कपडे बदले। उस अगोछे का तहमद बाधकर रसोइया बन गया। तन पर खद्दर की एक लम्बी सी कमीज पहन ली ताकि तहमद पर सहज दृष्टि न पडे। दिसम्बर का महीना था, बफ उतर आने के लिए आतुर थी, जिसके अभाव मे खुश्क ठड जान लेवा थी। शरीर केले के पात सा थरथराने लगा। हीटर का स्विच ऑन कर उसके गिर्द सिमट गया। गनीमत थी कि गाव के रसोइयो की तरह बनियान मे रहना अनिवाय न था। कमीज पहनने की अनुमति ने निमोनिए की सभावित नौबत से बचा लिया।

गोभी की सब्जी उबाल तथा कुछ रोटिया सेंककर मैंने ताऊजी से खाने का आग्रह किया।

परोसी गयी थाली से उन्होंने सब्जी को छूना तक अश्रेयकर जाना। रोटी के चन्द कौर तोडकर कचर-कचर चबाने लगे। ग्रास निगलने के लिए कभी पानी का

घूट भर लेते। मैं पाक कला म निष्णात होने का दावा नही करता। हीटर की आच म रोटियो पर स्याह टुकडे उभर आए थे। कही कही आच पहुच पाने तक म अक्षम रही थी, वहा सफेद धब्बे रह गये।

कुछ कौर चबा चुकने पर अनायास उनकी नजर घर से लाए गए थले से जा टकराई। अछूत रोटियो के भाग्य का अभी तक मैं निणय नही कर पाया था। उन्होने चेताया, "यह रोटियां अभी यही पडी हैं, मुन्नू "

मेरी चेतना पर चाबुक पडा। झट से रोटियो की गाठ लेकर बालकोनी म आ गया। घुप्प अधेरे मे एक कौर तोडकर मुह म डाला तो उन्हे फेंकने का मन तो कदापि न हुआ, खालिस घी के बिस्कुटो की तरह लार से छूते ही कौर गल गया। मैं अपने पडोसी रघुनाथ ऑक्टा के कमरे म गया और गांठ एक कोने मे रख दी। उस समय वह बिस्तर मे पडा सोने की रिहसल कर रहा था। जब तक वह अपनी जिज्ञासा को वाणी दे पाता, मैंने अपने होठो पर उगली रख उसे समझा दिया कि वह चुप रहे।

मैं वापस लौटा तभी हमारे एक अन्य छडे पडोसी प्रेमपाल डँगटा यमदूत की तरह द्वार पर खडे हो गए। वह निचली मजिल के एक कमरे म रहता है।

रोज की तरह आज भी वह नशे के घोडे पर सवार था। सूर्यास्त के साथ ही उसकी आतें ऐंठने लगती हैं कभी कभी ऑक्टा और मैं भी पीने मे उसका साथ दे देते हैं। मै मन ही मन कुनमुना रहा था कि कहीं इसने आज भी पीने पिलाने का प्रसग छेड दिया तो कही का नहीं रहूगा। वशिष्ठ का वशज मैं अपनी सारी सस्कृति को भुलाकर शिमला की महानगरी मे कैसी दलदल मे फसा हुआ था, यह दखकर ताऊजी मुझे कितना कोसेंगे, घर म कितनी फजीहत होगी सारे गांव मे हमारे कमकाडी व धर्मनिष्ठ परिवार के नाम को बट्टा लगेगा मेरे कारण।

और वही हुआ। डगटा ताऊजी की दृष्टि विगत किए आदेशात्मक स्वर मे कह रहा था, "आज यार, मजा आ गया, एक ठेकेदार टकर गया था, खूब पिलाई साले ने ले तू भी पी इम्पोर्टिड माल है "

मैं पानी पानी हो रहा था, पर उसका टेप अनवरत जारी था, "बुला साले ऑक्टे को भी आधी बोतल भरी है तुम दोनो के लिए काफी माल है मेरी टकी तो फुल्ल है " कहकर वह अपनी परिचित शैली मे 'हि हि हि' कर हसने लगा।

इस विकट स्थिति मे मेरी जीभ तालु से जा चिपकी थी और दिमाग मे मक्खिया भिनभिनाने लगी थी। तभी ऑक्टा न आवाज दी, "अबे साले ओ डँगटे के बच्चे इधर आना "

डँगटा अधिक इन्फारमल होकर छडो वाली गाली मिश्रित भाषा पर उतर आया, तभी ऑक्टा बिजली की फुर्ती स मेरे कमरे म आया और डँगटा को प्राय

घसीटता हुआ ले गया—"अबे अघे ! देख तो सही इसके यहा बुजुग मेहमान आये हुए हैं "

ईंगटा जैसे ताऊजी के अस्तित्व से अनभिज्ञ था, आखे फाडकर उन्हे दखन लगा।

ताऊजी की चेतना पर इस ड्राम से ऊब हावी होने लगी थी। और मैं भविष्य के प्रति शकित था

प्रात चार बजे के लगभग जगकर वे बिस्तर मे लन्ट लट रामचरितमानस का जाप कर रह थे। नीद टूटी तो भीतरी खीझ को दबाते हुए मैंने बिजली जला दी। दूसरे कमरे से आ रही करवट बदलने की ध्वनि कह रही थी, आँवटा सो नही रहा, झल्लाहट म जाग रहा है। कमरे म उजाला होते ही ताऊजी दैहिक दैविक भौतिक तापा, राम राज काहुहि नही व्यापा ' पूरा कर बोले, "मु नू ! उठ गया हो तो पानी गम करने रख दे।"

मेरी खीझ किस ताप के कारण थी, कहना कठिन है, पर उठमा मजबूरी हो गई। लोई का बुक्कल बाध अलसाई आखें मलते हुए बिस्तर त्याग दिया। आज शायद जीवन म पथम बार सूर्योदय से पूव जागा था।

मन्त्रोच्चारण के बीच वे शौच, स्नानादि कार्यो स निवृत्त हुए तो सात बज गए थे। उन्हें विधानसभा पहुचाकर समय पर दफ्तर पहुचना था, इधर सरकार ने समय की बहुत पाबन्दी कर दी है।

खाने म मैंने दाल चावल पका दिए थे, पर दो चार कौर खाकर उन्होने अना यास हाथ खीच लिया, शायद खाना पसन्द न आया हो या अछूत विचार किसी अन्य रूप मे उभरा हो।

मेरा सबल आग्रह तिनके की तरह उड गया।

माल रोड पर चलत-चलत सहसा उन्हे विधायक हरिसिंह की याद आ गई। समय कम था और टालने के उद्दश्य से मैंने वायदा किया कि शाम को अवश्य हम उनस मिल लेगे।

ताऊजी हरिसिंह के समथको म से थे। जाति के हिसाब से हरिसिंह कुर्मी है, उनका छुआ हुआ जल ताऊजी नही छू सकते, पर विचारो का मल वे निभाना खूब जानते है।

सयोग से हरिसिंह विधानसभा मे ही मिल गए। ताऊजी का तनाव काफूर हो गया। मैं दफ्तर चला गया।

तीन दिन इसी क्रम में बीत गए। खाने की तरफ उनका सकोच यथावत बना रहा। उनके चेहरे पर उभर आए थकान व कमजोरी के चिह्नो को मैंने भ्रम जान कर मन मना लिया।

फिर भी इच्छा थी कि सम्मेलन का झमेला शीघ्रातिशीघ्र समाप्त हो जाए

और ताऊजी घर जाकर अपना खानपान सामान्य बना ले।' इससे अधिक मैं सोच भी क्या सकता था।

तीसरी साय ताऊजी देर तक नही लौटे। नौ बजे तक मेरे सयम का बाध टूट गया। मैंने ऑक्टा से सात्वना चाही तो वह व्यग्यात्मक हसी ठसकर बोला, 'यार! आज वह न आये तो आराम से सो तो सकेंगे।' पर मुझे गीत से कोई सहानुभूति नही थी। भीतर अनिष्ट की एक शका, समुचित कारण न होने पर भी प्रबलतर हो गई थी।

कमरे की चाबी आक्टा के पास सभला मैं ताऊजी की तलाश म निकल पडा। चढाई चढते आज सास अस्वाभाविक रूप से फूल गई थी। सजौली चौक पर मैंने उजडी सास को सामान्य बनाने के लिए कुछ लम्बी सासें खीची।

ताऊजी कहा हो सकते थे विधानसभा या विधायक हरिसिंह के यहा उन्ही से पता करना ठीक रहेगा।

पब्लिक बूथ वर्षों से अकमण्यता की दशा म पडा है। किराने की थोक दुकान पर तोदी लाला से फोन मागा तो उसने पहले सत्तर पैसे छुटटे देने के लिए कहा। शिमला मे रेजगारी की कमी होने पर भी मेरी जेब म एक अठन्नी और एक चवन्नी मौजूद थी।

फोन हरिसिंह ने ही उठाया, पर उन्होने जो सूचना दी उससे पल भर को तो मेरी नसो म खून जम गया। लगा बर्फ ठूस दी गई है।

उन्होंने बताया कि ताऊजी सम्मेलन म ही बेहोश होकर गिर पड़े थे। उन्हे एम्बुलेंस मे स्नोडन भिजवा दिया गया है। लगा गोश्त खाते बरबस एक हड्डी मर गले म अटक गई है।

'कौन श्रीपति?' मेरे विमूढ प्रश्न पर नर्स डाटने लगी, "यहा तो रोज ही हजारो श्रीपति आते हैं। हम जुबानी कुछ नही बता सकते।' कहते द्रुत गति से वह दूसरी ओर सरक गई।

एयर कडीशड स्नोडन अस्पताल के बरामदे मे खड़े मेरे दिमाग की नसो मे गहरा तनाव खिच गया। 'क्या हो?' सोच ही रहा था कि सामने से एक युवा डाक्टर आता दिखा। मैंने पस्त हौसले से उनके चश्मे के भीतर झाकते हुए पूछा, "डॉक्टर! कैन यू हेल्प मी?'

डॉक्टर ने सहृदय मुस्कान चेहरे पर बिखेरते हुए पूछा, "व्हाटस योर प्रॉबलम?"

मैं ताऊजी का परिचय देने लगा तो डाक्टर ने हस्तक्षेप किया, 'बी ब्रीफ माई बाय उन्हें डिजीज क्या थी?"

उनकी बीमारी मैं क्या जानता "हा तीन चार दिन से वे अनशन की हालत मे थे।" डाक्टर ने जरा चौंककर इमरजेंसी वार्ड म पता करने के लिए कहा।

इमरजेंसी की इ क्वायरी के शीशे के भीतर एक नस ऊघ रही थी। उसकी आँखें बन्द और खुली होने के बीच की किसी दशा मे थी, मैंने घण्टी का बटन दबाया तो वह चौंकी, "हाऊ सिल्ली ! घण्टी बजाना भी नही आता " शायद हडबडी मे मुझसे तीखी आवाज मे घण्टी बज गई हो।

वह खिडकी के पास आकर खडी हो गई।

मैंने अपनी व्यथा बयान की।

उसने काउटर पर पडे रजिम्टर के प न टटोले 'क्या नाम बताया थी ।"

"श्रीपति वशिष्ठ !"

कुछ देर खोजने के बाद उसकी पतली कलात्मक उगलिया ठहर गयी ' वशिष्ठ वशुष्ठ तो नही हैं हा, श्रीपति हैं उम्र क्या हागी ?"

"यही कोई साठ सत्तर साल !"

उसने मुझे क्रोधित नजरो से देखा "साठ और सत्तर मे दम साल का फक होता है बाप का नाम ?"

हडबडी म मैं अपने बाप का नाम बता गया, पर शीघ्र ही गलती सुधार ली।

'जनरल वाड बैंड न० तेरह !"

नम्बर चाहे अनलकी था, पर मेरे गले मे फसी हडडी जरा नरम पड गई।

बैंड न० तेरह खाली था। आसपास पडे मरीजो का ग्लुकोज चढ रहा था। कुछ कराह रहे थे, कुछ गहरे सन्नाटे में त द्रा म खोए थे पर ताऊजी का कही कुछ पता नही था। बेबसी की हालत मे मैं पुन इ क्वायरी पर लौट आया।

"क्या ?" नस आंखें फाडकर चिल्लाई, "बैड खाली कैसे हा सकता है ?"

फिर व्यग्रता से रजिस्टर के पन्ने टटोलन लगी, "जाने कैसे कैसे मरीज आ जाते है हमारी नौकरी से खेलने ! अपने बिस्तर से गायब होकर सस्पैंड करवाएगा किसी को '

अचानक जैसे कोई अ वेपण पूरा हुआ हो, "अरे ! रिमाक्स कालम तो मैने देखा ही नही था ।"

विधायक हरिसिंह की सिफारिश पर उ हे स्पेशल वाड न० नौ मे शिफ्ट कर दिया गया था, जिसका अतिरिक्त किराया मरीज को स्वय चुकाना होता है।

ताऊजी निश्चेष्ट पडे थे। ग्लुकोज बूद बूद टपक रहा था और उनकी बेबस, अधमुदी पलकें छत की शू यता पर गढी थी।

'ताऊजी !" भीतर पहुचते ही भावुकता मे मैंने पुकारा।

सामने खडी नस ने अधरो पर उगली रखकर मुझे चुप रहने का सकेत किया, बिलकुल वही मुद्रा जैसी मैंने ऑक्टा के कमरे म ताई द्वारा भेजी गई रोटियो की गाठ रखत वक्त बनाई थी।

ग्लुकोज रात भर टपकता रहा। प्रोपर नारिशमेंट के अभाव मे उनका डिहाईड्रेशन हो गया था।

प्रात उनकी चेतना जागते ही मेरी उपस्थिति का आभास पाकर वे आखो मे सैलाब भर क्षीण स्वर म बोले, 'मुन्नु ! क्या हो गया मुझे शायद शिमला का पानी नही रुचा !"

भले ही उनकी यह बात मेरे हलक मे अटक गई, पर कुछ ऐसी सवेदना जागृत कर गई, जिससे अपने नेत्रो का नम होने से मैं न बचा सका। हालाकि वशिष्ठ के किसी वशज को शिमला जसी स्वास्थ्यवर्द्धक जगह का पानी न रुचना तकसगत नही था—ऋषि मुनि तो बर्फीले पहाडो पर बारह महीने ।

मेरी इस ध्यान मुद्रा को उनके क्षीण स्वर ने तोडा "घर चले जाना है मुन्नु ! जाने कैसी कैसी अछूत दवाइया डाल रहे हैं मेरे शरीर म यह लोग यहा मुझे कुछ हो गया तो तू तबालत मे फस जाएगा।'

स्नोडन से छुट्टी पाना आसान था, पर कठिन था तो इस हालत मे ताऊजी को घर पहुचाना। उससे बढकर मेरी जेब खाली थी।

'ले चल मुन्नु यहा दान दक्षिणा के बिना मर गया तो जिन्दगी की पूरी तपस्या बेकार जाएगी। गऊदान के बिना मरना राम राम मरना तो वही ठीक रहेगा जहा जन्मा हू सद्गति तो मिलेगी।"

मेरे गले मे फसी हड्डी गहरा दद देने लगी थी।

उन्हे वही छोडकर पैसा के इन्तजाम म निकल जाना पडा। छुट्टी तो मिल गई, पर दफ्तर मे किसी बाबू के पास पसे नही थे। साहब की मिन्नत करनी पडी।

दो सौ रुपए के उधार स अस्पताल का बिल चुकाया और निबल ताऊजी को सहारा देता हुआ बस स्टैंड की ओर चल दिया।

दायरे

गाव की अल्हड छोकरियो की आडी तिरछी नजरो से बिंधने के आनद और रात मिलने वाले देसी ठर्रे के एक पोवे के लालच मे हरिचद ने मा के घोर विरोध के बावजूद थ्रेशर पर नौकरी कर ही ली।

दिन रात काम के हिसाब से चार रुपए दिहाडी और दो जून रोटी चाहे कम हो, पर घर मिलने वाली सुविधाओ और अम्मा की चखचख से मुक्ति की तुलना मे यह बुरा नही था।

जीवन भर सेना की नौकरी मे शेर सिंह काम लेना खूब सीख गया था।

दुनीचद न रोटी का कौर प्रयास से निगलकर पानी का लोटा मुह से लगा गटागट पानी पीने लगा। भगती से उसे बडी चिढ आती थी। वह खाने बठता नही कि कोई न कोई राग छेड देती है। दुनिया भर की शिकायतें भगती के विरोध के अतिरिक्त जैसे किसी को और कोई काम ही नही है। पेट मे पानी जाने से रोटी की जलन कुछ कम हुई तो दूसरा कौर तोडते हुए उसने कहा, 'तू कभी चैन से रोटी खाने भी देती है, अगर वह काम पर लग ही गया तो कौन सा पहाड टूट पडा है।"

भगती की बहस को सार्थकता मिली वह कितना बकती झकती है पर दुनी चद चुपचाप सुनता रहा है। कभी उलझता नही। आज उसने कुछ तो जवाब दिया तो बात आगे बढेगी ही।

"तू समझता क्यों नही ? दुनिया भर म और थोडे काम है जो उस दुष्ट की नौकरी की जाए।"

"तो वह कौन मुझसे पूछ कर लगा ?'

भगती ने उकसाया, "अरे, तू बाप है उनको डाट डपट सकता है, वहा से हटने के लिए मजबूर कर सकता है।"

"वहा स उसे हटाना ही क्या, करने दे काम चार पैसे कमाएगा।"

"तू तो कुछ समझता ही नही, कितना बेईमान आदमी है वह कैप्टन। पिछले साल दस दिन तक उसका घास काटा था। सारी कमाई ब्याज मे ही डकार गया

था।"

दुनीचन्द ने उकताकर उत्तर दिया, "जो काम करेगा वह मजदूरी भी ले लेगा, तू क्यों किसी की बुराई म पडती है ?"

"तेरा भाईचारे का चाचा जो ठहरा" भगती तुनक गई है, "बडी पीड़ा उसकी। सरकार सवा आठ दिहाडी देती है और हरिया को सिर्फ चार दे रहा है "

दुनीचद ने चिढकर कहा, 'अरे भाई जान छोड, टुकडा खा लेने दे क्यों चाटती है दिमाग खुद छुडा ले उसको '

भगती ज्यों इसी अधिकार की प्राप्ति के लिए बहस रही थी, "छुडा लूगी। छुडाकर दिखाऊगी, कानो से खीच कर घर लाऊगी उसे "

भगती के दिमाग म लावा फूट रहा था चलते चलते। अजीब किस्म का दर्द है न कोई रौब, न दाब ! न औरत पर न लडके पर। यह भी कोई बात हुई लडका उसके पूछे बिना कही नौकर हो जाए अभी से हाथ से बाहर हो गया तो शादी के बाद पूछेगा। भला। गाव के बाकी मर्द भी तो है। कितना मारते-पीटते हैं अपनी औरतो को, कितना डाटते फटकारते हैं औलाद को। पर उसका पल्ला ऐसे डरपोक मर्द से बधा है जो कुछ भी नही करता, चुप रहता है गुम-सुम अपने मे ही खोया खोया।

बुजुर्ग जो कहते थे, औलाद और औरत को दबाकर रखो, तो क्या वे झूठ बोलते थे ? जिस आदमी से औलाद न दबी वह भी कोई मर्द है? भगती ने तो जैसे तैसे निभा ली दुनीचद के साथ। खसम था पर मर्दों वाली कोई बात नही की जिंदगी भर। अब लडके का क्या है कल को जुदा बैठ जाए तो क्या इज्जत रह जाएगी। चटखारे लेकर लोग कहेंगे दुनीचद का लडका ऐसा निकला, वैसा निकला। आज ही कहने म नही है तो कल ब्याह शादी भी होगी। पराई लडकी रहने लगी उसे हमारे साथ। पर नाक तो भगती की कटेगी। उसको क्या ! उसकी तरफ से तो न सावन हरे, न भादो सूखे कोई मरे, कोई जिए। पर वह तो गाव मे जीने जोग न रहेगी। शरीफ लोग सास न भरन देंगे उसे।

थ्रेशर की घरघराहट म उसकी आवाज दब रही थी या हरीचद जानबूझ कर उसकी आवाज सुनकर भी अनसुना कर रहा था। उसने सिर लाल कपडे से बाध रखा था। भगती को यह भी अपशकुन सा दिखा ज्यो उसने लपेट रखा हो सिर पर। कमरे म लाल अगोछा लपेटा हुआ है गहू की गठिया कसा ऐठ ऐंठ कर चलती मशीन के भूतिया मुह म डाल रहा है जैसे कोई बहुत बडा सरकारी अफसर कागजो पर दस्तखत करता है।

"अबे तू सुनता क्या नही ? मैं कब से तुझे पुकार रही हू।'

हरीचद उपेक्षा का भाव चेहरे पर लाया और इस वाणी मे समेट कर उत्तर

दिया 'अम्मा ! दूर रह मशीन खराब है ।"

भगती पुत्र की अवज्ञा से चिढ गई, 'मशीन का मार गाली तू घर चल "

हरीचद उसकी ओर मुडा । स्वर मे कठोरता लाकर बोला ज्या उस डाट रहा हो "तू यहा स चली क्यो नही जाती, अम्मा ? मुझे काम करने द '

भगती जानती थी उसका स्वभाव ही इस रुखाई स बोलने का है। पुत्र की कठोरता के आगे वह पिघल जाती ह, मा का हृदय है न, नम्र होकर मिनत मानने लगी मरा अच्छा पूत ! मत कर उस दुष्ट का यह काम " कहते कहते उसका हाथ हरीचद के कधे तक चला गया ।

मा के स्पश से हरीचद का पारा एकदम चढ गया । उसका हाथ झटक कर, आखें तरेरकर गरजा, "अम्मा ! तू मुझे काम नही करने देगी मैं कह रहा हू घर चली जा ।"

क्रोध म फुफारते उसके मुह से शराब की तीक्ष्ण गध का एक झाका भगती के नथुना से टकराया ।

वह आगबबूला हो उठी, "इस दुष्ट ने तुझे शराब पिला दी है न । पी ले, खूब पी इस जहर का, हरामी कही का '

हरीचद पुन निरपेक्षता से अपने काम मे जुट गया था ।

क्षण भर को भगती विमूढ सी वही खडी रही । उसे नही सूझ रहा था कि वह अब क्या करे । घर लौट जाने से पति के सामने हाकी गई डीग की हेठी होती थी । और वहा खडे रहते नही बनता था ।

यह कल का लौडा जो पैदा होने से तीन महीने तक लगातार रोता रहा । और जिसके लिए उसने दिन रात घडी भर को आख तक न झपकी थी, आज वशम होकर, शराब के नशे म धुत, अम्मा की इतनी उपेक्षा कर रहा था । उसे याद है एक बार दुनीचद पीकर आ गया था । एक फौजी भतीजे न पिला दी थी । सारी रात वह उल्टिया करता रहा पर उसने पूछा तक नही था उसे । सवेरे उठते ही ऐसी डाट पिलाई कि आखें तक न मिला सका था । कई दिन तक नजरो के सामने आने से कतराता रहा था और आज पुत्र का व्यवहार देखकर उसकी आखे पथराने लगी थी । इतनी उपेक्षा, इतना अपमान तो उसने आज तक नही सहा था ।

घृणा और क्षोभ एक साथ दिमाग मे उभर आया । दिमाग की नसें ज्यो फट पडने को तत्पर हो । क्रोध म जैसे उस अभिशप्त कर वापस चली, 'तेरा कभी भला नही होगा अभागे, तूने अम्मा की बात नही मानी भूल गया तू उन दिनो को जब "

वह बडबडाती जा रही थी कि सहसा मशीन की आवाज एकदम बदल गइ जैसे उसम कोई भारी चीज अटक गई हो । भगती ने पीछे मुडकर देखा हरी

चद का चेहरा सफेद हो रहा था, आँखें पलट रही थी और अगले ही क्षण एक चक्कर खाकर धडाम से जमीन पर गिर गया। भगती को सहसा विश्वास न हुआ जैसे कोई सपना आ रहा हो। उसे लगा कि हरीचद का दायां बाजू कट गया है और उसम से खून की धारा फूट पडी है जब उसकी विमूढता टूटी तो वह चिल्ला कर उसकी ओर दौडी। मशीन के पास उपस्थित दो चार लोगो ने तब तक घबराई आखो से हरीचद को घेर लिया था।

भगती न नेत्र फाडकर देखा। उसकी दाईं बाह से खून का फव्वारा छूटा हुआ था। मशीन की तरफ देखा तो कटा बाजू विकराल मुह के पैने दातो म फसा था।

जमीन पर हरीचद तडप रहा था न मरा न जिदा। भगती चिल्लाने लगी। बाकी लोग युक्तिया भिडाने लगे थे और भीड बढ रही थी।

जमीन पर खून का धब्बा गहराने लगा।

हस्पताल ले जाते हुए वह रास्ते म ही मर गया। भगती की आंखो मे आसू जम चुके थे और गला चिल्ला चिल्लाकर फट गया था।

वह ग्लानि से दबी जा रही थी। यदि वह दुराग्रह न करती तो शायद हरी-चद न मरता, उसने ही तो उसे कटु वचन कहे, उसने ही तो पुत्र की अमगल कामना की ह ईश्वर! तूने यह क्या अनथ किया। तूने भगती को क्यो न उठा लिया। क्यो तूने जवान बेटे को नजरो से उठा लिया?

इतना बडा दड! इतना भीषण! इतना कठोर! जिसकी पीडा मे वह जीवन भर तडपगी। एसी पीडा जिसका कोई इलाज नही। कलेजे म ऐसा तीर लगा जो न तो मरने देगा न जीने दगा पुत्र विछोह और वह भी इतना हृदय विदारक! उसका कलेजा साबुत कैस है कैस नही यह फटकर टुकडे टुकडे हो गया।

उस कप्टन शेर सिह का ध्यान आ गया। उस बदमाश ने ही उसके पुत्र की जान ली है। वह तो पहले ही कहती थी उस खतरनाक भूतिया मशीन पर हरी चद काम न करे। मशीन पर काम करने की ट्रनिग उसे कहा थी पर उस हरामी ने शराब के लालच मे उसे मशीन पर लगा ही दिया था। दया धम तो उड गया जमाने स, अपना स्वाथ सर्वोपरि है। अधमरे हरीचद को उठाकर लोग अस्पताल ले चले थे और वह राक्षस तल की कनी लेने घर गया था। वह रहा था, "शहर तो जाना ही है, तेल भी लेता आऊगा।" अरे, इतना पत्थर दिल इन्सान। हैवान है पूरा। कोई तडप कर मर रहा हो और वह कह कि मैदान जग मे तो लाशें यू बिखरी होती हैं कि गीदड भी खाने से इन्कार कर दें। जी तो हो रहा था उसका खून पी लेती पर उसे हरीचद की हालत दखकर जब्त करना पडा था। कितनी पीडा स कराह रहा था, कितना दद होगा बेचारे को बाजू कट जाने का कैसे बहोश पडा था। वह क्यो नही मर गई उसके साथ, हे भगवान! क्या अन्याय किया तूने?

दुनीचद सूनी आखें लेकर श्मशान से लौटा और आगन म बैठ गया। भगती दौडकर उसके पास आकर बिलखने लगी पर वह टस से मस न हुआ। कुछ ऐसा पत्थर हो गया था जिस पर किसी भावना का असर नही होता।

"मैं कोट कचहरी जाऊगी, फासी लगवाऊगी उस बदमाश को ।"

इतना बडा अमानवीय हादसा हो गया, तो जज लोग जरूर कैप्टन शेरसिंह को फासी का हुकम सुनाएगे, ऐसा कुछ विश्वास हो चला था भगती को।

पुलिस पूछताछ के लिए आई। लाश का पोस्टमाटम क्यो नही करवाया गया, लाश जला क्यो दी गई। घर शर पर और कौन कौन लाग काम करते थे। हरीचद को क्या कैप्टन ने जबरदस्ती काम पर लगाया था आदि आदि दुनीचद तो प्राय चुप रहा। हा, भगती ने खुलकर शेरसिंह की बुराई की जैसे उसे ही पूणतया जिम्मेदार ठहरा रही हो।

समय अपनी गति से सरकने लगा।

पुलिस थाने के चक्कर काटकर दुनीचद थक गया। उसकी तो इच्छा थी कि कही न जाए पर भगती के दुराग्रह के आगे मजबूर था। अतत उसने एक वकील मि० चदल की शरण ली।

वकील ने दुनीचद को कोट के द्वारा कुछ हरजाना दिलाने का वायदा किया।

दिन, सप्ताह और मास बीतने लगे।

तीन महीनो मे दो पेशिया हुइ। शायद कचहरी के चक्रो से बचने के लिए शेरसिंह ने मि० चन्देल को माध्यम बनाकर दुनीचद से समझौते की पेशकश की।

"समझौता ?" दुनीचद का मुह खुला का खुला रह गया।

मि० चदेल ने स्थिति स्पष्ट की, "यू तो केस कोट म चल रहा है। मैं इसे लडता रहूगा पर केस जितना लम्बा चलता है उसम उतना ही दम कम होता जाता है और फिर मेरी फीस भी बढती जायेगी।"

तनिक मुस्कराकर निर्णायक स्वर मे बात समाप्त करते हुए वकील ने कहा, "चार-पाच हजार रुपए हरजाना तुम्ह बिना कोट कचहरी के ही दिला दू तो क्या बुरा है ?"

भगती कुछ भी सुनने के लिए तैयार नही थी। वह हरगिज केस वापस लेने के पक्ष मे नही थी। उसे विश्वास था कि उसके ममत्व की पुकार शेरसिंह को कडी-से-कडी सजा सुनाएगी।

दुनीचद ने हस्तक्षेप किया कचहरियो मे मुकदमे कई-कई वष चलते हैं।"

"तो क्या हुआ ? चलते रहे।"

"और तो कुछ हुआ, न हुआ, पर मुकदमे मे घर का दाना दाना बिक जाएगा।

हजार रुपया वकील पहले ही खा चुका है। आगे की भगवान जाने "

भगती निरुत्तर हो गई, लोहा गर्म देख दुनीचंद ने चोट की, "लड़की जवान हो गई है, चार पांच हजार हाथ लग जाए तो अच्छा घर वर मिले उसे नहीं कोई पूछने म रहा, कब तक घर बिठाकर रखेगी।"

भगती की चुप्पी देख दुनीचंद न बात बढ़ाई, "तू कहे तो पांच हजार रुपये हरजाना ले दोनों लड़कियों की शादी के लिए आधा-आधा रख छोड़ेंगे।"

भगती ने हार मान ली, "वकील का खर्च भी तो लेना साथ।"

ठीक है मैं छ हजार पर अड़ जाऊंगा।"

छ हजार पर ही फैसला हुआ था। लड़की की शादी भी तय हो गई थी और भगती प्रफुल्ल होकर तथा हाथ खोलकर खर्च करने लगी। वह दिखा देना चाहती थी कि गांव भर म वह किसी से कम नहीं है। किसी के आगे वह हाथ थोड़े ही फैला रही है जो अपनी मर्जी का खर्च न करे। लड़की की शादी है। कौन से रोज रोज होनी है क्या न करे वह खर्च। खाली हाथ भेज दे लड़की को ससुराल म

दुनीचंद ने एकाध बार उसे टोका भी, "इतना खुला खर्च मत कर, दूसरी लड़की के लिए भी कुछ बचा लें। बार-बार इतना रुपया हाथ नहीं आएगा।" पर भगती ने दो टूक उत्तर दिया, 'भगवान सबका है जसे एक भी हो रही है, वह दूसरी की भी करवाएगा।"

खलासी का अगला सीजन आ गया था। शेरसिंह ने दुनीचंद को थ्रैशर पर काम करने की पेशकश की भी जिसे वह टालता रहा था। गांव के सभी लोग टाल रहे थे। जिंदगी का मोह सभी को था पर दुनीचंद के लिए पन्द्रह रुपये दिहाड़ी और अच्छे खान पान की पेशकश न यद्यपि निर्णायक हद तक तो नहीं पहुंचाया था पर कुछ कुछ सोचने पर विवश जरूर कर दिया था। शेरसिंह एक हजार रुपये एडवांस देकर दुनीचंद की बेटी की शादी म सहायक होना चाहता था। इस रकम को दुनीचंद चाहे तो कभी भी बिना ब्याज वापस कर दे, चाहे तो थ्रैशर पर काम कर पूरा कर दे।

इतना सुनते ही भगती आगबबूला हो गई, 'हम क्यों लें उसका एहसान?"

"इसम एहसान कैसा पगली?' दुनीचंद ने समझाया, "विपत म आदमी ही तो आदमी के काम आता है, रुपया हाथ आ रहा है तो क्या जाने दें।"

भगती जितना जल्दी बिदकती थी उतना ही शीघ्र संयत होकर सहमत भी हो जाती थी।

'काम करना है तो कर ले पर देख बात पक्की कर लेना कहीं बाद म वह मुकर न जाए

एक हजार रुपए नकद घर आ जाने से भगती का विषाद घुल गया। समय-समय का फेर है, जिसको बुरा कहा वही अपने लिए पसीजा इतना बुरा तो नहीं

है कप्टन जितना कि वह समझ बैठी थी। अपना मारेगा भी तो छाया म तो फेंकेगा। किसी और ने तो तिल चीज के लिए भी नही पूछा कि भगती तेरी लडकी की शादी हो रही है, कोई मुश्किल हो तो कह ! कौन करता है आडे समय मे किसी की मदद। कलियुग है

हरीचद को भी कैप्टन ने जानबूझकर थोडे मारा है, वह तो अपनी गलती से ही मरा था, इतनी ही उमर लिखी थी बिचारे की ! फिर भी कैप्टन न छ हजार रुपया हरजाना दिया एक हजार और द रहा है बिना ब्याज के, कौन दता है गरीब को आजकल पैसा भी। ब्याज पर भी नही तीन तीन पक्के परनोट और स्टाम्प भरवाकर भी सीधे मुह पैसा नही देत लाग बिना ब्याज की बात तो करना ही फिजूल है, यह कोई कम है जिंदा रहे वेचारा। बडे आदमी की बडी बात। उसका परिवार खुशहाल रहे, सब जिए।

दुनीचद तो थ्रैशर पर बहुत व्यस्त हो गया है आजकल दिन रात जूझ रहा है वहा। घर आने का समय नहीं है उसे और भगती जो सोर खरोश के साथ बेटी की शादी का सामान जुटाने म लगी है।

मशीन चौबीस घटे घरघराहट की ध्वनि से चल रही है। सारा गाव शोर मे डूबा है।

निलंबन

"आप का नाम ही सुधीर सक्सेना है ?" स्टाफ रूम में श्रीमती कल्पना श्रीवास्तव ने पूछा तो वहा उपस्थित दो तीन महानुभावो ने फटी निगाहो से उस ओर देखा जैसे आसमान म बिजली कडकी हो। स्टाफ रूम के दूसरे कोने म चाय पी रही अधेड मडम के हाथ स समोसा छूट कर फर्श पर गिर गया।

साथ वाली मैडम न उसे सात्वना दी, "उठा लीजिये, दीदी ! सुबह ही जमादार ने फर्श को गीले कपडे से पोछा है।'

बात अदभुत थी। किसी अध्यापिका का एक सहयोगी अध्यापक स इस तरह खुलकर बोलना इस सस्था की परपराओ के विरुद्ध था। कल्पना को यहा आये अभी कुछ ही दिन हुए थे। शायद इस रीति स वह अनभिज्ञ थी।

कल्पना के इस कथन स फूटे आश्चय का अहसास कर सुधीर न हसी रोकते हुए कहा 'जी हा, म ही सुधीर सक्सेना हू।

"आप की कहानिया मैं नियमित पढ़ती रहती हू। बहुत अच्छा लिखते हैं आप।"

'धन्यवाद ! यह सब सुविज्ञ पाठको के आशीर्वाद का फल है।"

अधेड मैडम फर्श पर स समोसा उठा चुकी थी पर मुह तक ले जाने म उसे कठिनाइ का अनुभव हो रहा था। आखो म उभरा अविश्वास का भाव जता रहा था जैसे वह कोई फिल्म देख रही हो।

'दो तीन पत्रिकाओ का तो मुझे मालूम है। मसलन सारिका और धमयुग बाकी आप किन किन पत्रिकाओ म लिखते है "

सामने बैठे राधारमण न कोट की जेब स चश्मा उतार कर आखो पर चढा लिया और अखबार म कुछ खोजने लगे। प्रेमदत्त शास्त्री किंकर्तव्यविमूढ से देखते रहे।

स्टाफ रूम म उभरे इस अजीब से शून्य म बात करना शायद कल्पना को तो न अखरा हो क्योकि इस वातावरण से अभी वह नावाकिफ सी थी, पर सुधीर के लिए यह स्थिति आरामदेह नही थी। कल्पना की सहृदयता ने उन्हे विभोर कर

दिया ज्यो सूखे बीहड म झरना फूट पडा हो। इच्छा हुई कही एकात म चल कर बात की जाये।

बात मामूली थी पर इसकी चरम परिणति हुई। मच पर से विधायक दरबारी लाल ने उन सरकारी कमचारियो को चेतावनी दी जो उनका विरोध करत है। सुधीर ने मच पर सहमे सिकुडे स बठे प्रिसिपल रामस्वरूप पर चिगारिया छोडती निगाहो से दखा और पिजर मे कैद जानवर की तरह कसमसा कर रह गय।

लोक निर्माण विभाग के दफ्तर का उदघाटन था और प्रिसिपल चाहते थे उस दिन की सावजनिक सभा स्कूल के ग्राउड म आयोजित हो। सुधीर ने स्टॉफ मीटिंग म इसका विरोध किया। एक तो चुनाव की घोषणा हो चुकी थी और उत्सव किसी अय विभाग का होने के कारण बात चाह सैद्धातिक थी पर मानी नही गयी। कल्पना श्रीवास्तव को छोडकर बाकी सारा स्टॉफ प्रिसिपल की पीठ पर था। सुधीर बहुमत के आगे चुप हो गये।

मीटिंग के बाद कुछ साथियो ने उह चेताया "रूलिंग पार्टी के आदमी का ऐसा विरोध घातक होता है, मि० सुधीर! चुनाव के बाद आपको सजा मिल सकती है। जैस आपका ट्रासफर कही इटीरियर म ।"

सुधीर हैरान थे। विधायक के साथ इतनी छोटी सी बात की चुगली खान का औचित्य क्या था। शायद प्रिसिपल अपनी वफादारी का प्रमाण पश करना चाहता हो। यानि स्कूल म ऐसे अध्यापक भी है जो आज के इस उत्सव को स्कूल के प्रागण म किय जान के विरुद्ध थे। फिर भी फक्शन यही हो रहा है। इस उपलब्धि पर इठलाने के उसके पास समुचित कारण हो सकत हैं।

पर फक्शन तो लोक निर्माण विभाग का था। स्कूल का उससे क्या लेना देना। यह सरकारी नौकरी का दुरुपयाग है फिर चुनाव के समय यह भ्रष्ट तरीका है और प्रिसिपल सिवाय वफादारी निभाने के इसम कहा तक उचित है। सुधीर जानते हैं यह विरोध किसी व्यक्ति का न होकर एक सिद्धात का था पर जब बहुमत ने उनकी बात को नकार दिया तो व चुप हो गय। बात आयी गयी हो गयी तो फिर विधायक से चुगली खाना उह बदनाम करने का हथकडा मात्र है। शायद इस स्कूल से तबदील करवाने का अस्त्र हो, जिसे राजनीति कहा जाता है।

सुधीर प्रिसिपल की आखो मे काटे की तरह खटकत है। इस स्वाभिमानी और स्वतत्र विचारधारा के अध्यापको की नहीं, बल्कि डम्मी किस्म के हा म हा मिलाने वाले और भेडो की तरह हाके जाने वाले समथको की जरूरत है। निजी व्यक्तित्व वाले आदमी को यह सरकारी जिम्मेदारी और नियमो के जाल म जकडन की कोशिश कर नीचा दिखाने के प्रयास म रहती है। अनुशासनात्मक कायवाही की धमकिया बात बात पर दता ह। जो जितना दबता है उसे उतना ही अधिक दबाया

प्रिंसिपल गरजे, "मिस्टर पहेलियां मत बुझाइये। स्पष्ट उत्तर दीजिये।"

"पहेलियां आप बुझा रहे हैं। आपका प्रश्न ही बचकाना है।"

प्रिंसिपल क्रोध से तमतमाये, "अच्छी सीनाजोरी है। संस्था का माहौल बिगाड़ रखा है ज्यों यह विद्या का मंदिर न होकर प्रेमवाटिका हो! कोई रोमांस भिड़ाने का बगीचा हो।"

सुधीर हैरान था—क्या बक रहा था यह बुड्ढा! कल्पना एक सम्भ्रांत व सुसंस्कृत अध्यापिका है। वाक्पटु, हंसमुख, सुसभ्य

"अब आप चुप क्यों हैं?"

सुधीर को क्रोध आ गया, "प्रिंसिपल साहब! इतना बड़ा निराधार लांछन आप किस आधार पर लगा रहे हैं? मुझसे अधिक यह कल्पना जी का अपमान है।"

"मेरे पास शिकायतें तो काफी दिनों से आ रही थीं कल सरपंच जी ने भी मुझसे शिकायत की है। उन्हें किसी ने बताया होगा। देखिये, यह एक को एजुकेशनल इंस्टीट्यूशन है। जवान लड़के लड़कियों पर इन सब स्कैंडलों का क्या असर होगा?"

सुधीर ने बात काट दी, "यह नानसेंस है, सफेद झूठ" पर प्रिंसिपल ने तब तक चेतावनी देनी शुरू कर दी थी। सुधीर को सुनना भी हास्यास्पद लगा। वे वहां से उठकर चल दिये।

"कल्पना जी, इस संस्था के सोच का दायरा बहुत तंग है। बेहतर यही हो कि आप मुझसे कम ही बोला करें।"

"क्यों?" कल्पना ने पूछा, "किसी से बोलना कोई पाप है क्या?"

"यहां तो पाप ही समझा जाता है।"

"समझा जाता होगा", उनका उत्तर था, "पर मैं ऐसा नहीं समझती। मेरे बोलने चालने पर कौन प्रतिबंध लगा सकता है?"

"मेरा आशय प्रतिबंध नहीं है", सुधीर बोले, "पर कहीं ऐसा न हो कि आपका मधुर स्वभाव ही कल को ग्लानि उत्पन्न करे। आखिर जिस समाज में हम जीते हैं उसके सिद्धांत अच्छे न लगने पर भी कुछ तो हमें स्वीकारने ही होते हैं।"

कुछ सोच कर कल्पना ने उत्तर दिया, "यदि आपको आब्जेक्शन हो तो आपसे मैं बोलना बंद कर सकती हूं।"

सुधीर ने हंसकर उत्तर दिया "यह तो मेरा सौभाग्य है जो इतनी संवेदनशील हैं आप! पर मैं तो यह सोचकर कुंठित हूं कि खाहमखाह कहीं आपके पारिवारिक जीवन में कहीं भूचाल न ले आयें लोग।"

"सुधीर जी, मेरा परिवार इतना संकीर्ण नहीं है। कभी चलियेगा मेरे साथ, आपको मैं अपने पति से मिलवाऊंगी", वे कुछ रुकीं, फिर एक ठंडी सिसकी लेकर

बोली, "काश ! वे यहां आ सकते तो मैं आज ही आपको उनसे मिलवा देती, पर वे तो अपंग हैं। बिस्तर से उठ नहीं सकते।"

प्रिंसिपल रामस्वरूप से कल्पना ने दो टूक यह दिया

'यह आपके दिमाग की विकृति है जो आप ऐसी संकीर्ण बातें करते हैं। मेरे बोलने पर प्रतिबंध लगाने का आपका कोई अधिकार नहीं है।"

प्रिंसिपल को यह धृष्टता लगी। बोले, "मैडम ? यह सरकारी संस्था है। जवान लड़के लड़कियों पर इन सब बातों का क्या असर होगा ?"

'कौन सी बातें ? कैसी बातें आप बोल क्या रहे हैं ? कौन सा जुल्म कर दिया है मैंने ? अजीब है आपका दिमाग भी।"

प्रिंसिपल ने चश्मा पोंछते हुए कहा, "आप औरतों को नौकरी की क्या जरूरत है सिवाये तनख्वाह से साड़ियां खरीदने के फैशन परस्ती और रागरंग "

कल्पना भड़क उठी, "आप तमीज से बात करिये मि० प्रिंसिपल ! नौकरी करना आपका ही एकाधिकार नहीं है। हर आदमी की अपनी मजबूरी होती है। ऐसे आक्षेप करने वाले आप हैं कौन ? नौकरी मैं सरकार की कर रही हूं आपकी व्यक्तिगत नहीं। खबरदार जो कभी ऐसी बेहूदा बात कहने की कोशिश की तो "

चर्चा फैल गयी। प्रिंसिपल ने कल्पना को डांटा सुधीर को खरीखोटी सुनायी। बहुत अच्छा हुआ। बेशर्मी की भी हद होती है। सरआम आपस में कैसे बात करते थे।

प्रिंसिपल पर उमड़ा क्रोध क्लास पर उतरा। पिटाई हो गयी। सारे जने यूं स्कूल आ जाते हैं जैसे पढ़ने नहीं मेले में आये हों। किसी के पास ज्योमैट्री की किताब नहीं, कोई कापी नहीं लाया, किसी के पास बाक्स नहीं। पढ़ने की किसी को चिंता हो तब न। कौन साला यहां पढ़ने आता है। तफरीह मारने, घूमने फिरने निकल जाते हैं घर से। नालायक हो गये हैं सब-के-सब।

काफी लंबी कसरत के बाद सुधीर थके टूटे से कुर्सी पर धंस गये। गला सूख रहा था और दिमाग की नसें फट पड़ने को आतुर थीं, विद्यार्थियों के सहमे चेहरे देखकर उन्हें तरस आ गया। कितनी मूर्खता कर दी उन्होंने आज, किसी का क्रोध किसी और पर कृष्ण से बोले, "बेटे, एक गिलास पानी तो लाना।"

इस कार्यवाही के परिणाम की प्रतीक्षा लंबी नहीं करनी पड़ी। प्रातः ही ऑफिस में एक सज्जन क्रोध से फुफकार रहे थे, "हम अपने बच्चों को यहां पीटे जाने के लिए नहीं भेजते।" और प्रिंसिपल मुस्कराकर ऐंठते हुए कह रहे थे "मेरा तो सब अध्यापकों को स्पष्ट आदेश है कि जो भी मारपीट करेगा, खुद जिम्मेदार होगा।"

सुधीर के आते ही प्रिंसिपल उन पर बरस पडे, "मि० सुधीर, कल आपने इन ठाकुर साहब के लडके को क्या पीटा ? शायद आपको नही मालूम इनका बडा लडका युवा सस्था का ब्लाक स्तर पर आर्गेनाइजिंग सेक्रेटरी है अरे ! मारा भी तो किसके लडके को जो कानून खुद जानता है "

सुधीर ने बैठते हुए कहा, आप उस लडके को यहा बुलवाइय तो जरा, उसे मुझसे कोई शिकायत हो तो मैं उसी से मुआफी मांग लूगा ।"

उस सज्जन ने हस्तक्षेप किया, "उसको क्यो बुलाना। मै पूछ रहा हू, क्या पीटा आपन उसे ?"

'हा", प्रिंसिपल ने समथन किया क्यो पीटा ? नही पीटना चाहिए था।"

' पीटे जाने का तो मुझे भी दुख है। खर, भविष्य मे ऐसा नही होगा "

"भविष्य म क्या वतमा म भी एसा न हो कभी, भूल कर भी याद रखो, ठीक पहचान के बाद ही ऐसी कायवाही करनी चाहिए' , प्रिंसिपल ताकीद कर रहे थे ।

'यानी पीटना हो तो उन्हें पीटा जाय जिनके अभिभावको की किसी पुश्त मे भी लीडरी के जुम न हो", सुधीर ने जोडा और उठकर चल दिय।

बलराम के केस मे भी न्यूनाधिक इसी इतिहास की पुनरावृत्ति हुई। पढने मे तो वह अच्छा था पर लबे अर्से तक स्कूल न आया तो नाम काट दना पडा। बाद मे पता चला कि उसे टाइफायड हो गया था। सुधीर ने उसे पुन दाखिले की अनुमति प्रिंसिपल स लान के लिए कहा पर वह लौट आया। प्रिंसिपल न अनुमति देने से इकार कर दिया था।

सुधीर खुद लडके को लेकर आफिस मे गये। प्रिंसिपल को सारी वस्तुस्थिति से अवगत करवाया पर वे जो चट्टान की तरह अडे तो तिल भर भी न खिसके। बीसियो कानूनो का हवाला देकर दाखिले के लिए उनका इकार चित्रगुप्त के खात जैसा पक्का हो गया।

वार्ता अभी चल ही रही थी तभी खादी टोपी पहने एक वृद्ध सज्जन दफ्तर मे पधारे। पिछली बार पचों के चुनाव मे दस वोटो के अल्पमत स हार गय थे पर राजनतिक क्षेत्र मे बनवारी लाल के बहुत निकट थे। सरकारी कमचारियो पर उनका दबदबा ज्यो का त्यो बना हुआ था।

प्रिंसिपल भिक्षां देहि की मुद्रा मे कुर्सी छोडकर उठ खडे हुए। चुने हुए विशेषणो के हार से अलकृत कर उन्हें बिठाया और सुधीर की तरफ देखकर आदेश दिया, "मास्साब ! अब आप जाइये।'

सुधीर उठ खडे हुए पर अब लडका तनकर खडा था। उसने बाहर जान का आदेश प्राय अनसुना कर दिया था। तभी नवागतुक न हस्तक्षेप किया, ' यह तो मेरा भानजा है। क्या कर दिया इसन ?' इस एक वाक्य को सुनत ही प्रिंसिपल

का मुख हल्दी की तरह पीला पड गया। यू बोल रहे थे जैसे गुफा क भीतर से हुकार रहे हो।

"आपका भानजा है। यह तो मुझे मालूम नही था—मुआफ कीजिय।"

फिर सुधीर की तरफ दष्टि उठा कर बोले, "मास्साब ! आपने मुझे कहा बताया कि यह पडित जी का भतीजा है।"

"भतीजा नही भानजा।" वृद्ध ने गलती सुधारी।

"हा भानजा ही।"

सुधीर के मुह म कडवाहट उभरी। उन्होने थूक निगलकर उत्तर दिया "मैं विद्यार्थियो के रिश्तेदारो का खाका नही रखता हू।"

प्रिसिपल ने यू तेवर बदले ज्यो उनके सम्मान पर चोट पडी हो, 'खैर, लाइय इसकी एप्लीकेशन और कीजिये दाखिल।"

सुधीर ने नाटकीय ढग से पहलू बदला, 'मैं अब इसे दाखिल नही कर सकता।"

"क्यो?' आखें तरेरकर उसने कहा, 'यह मेरा आदेश है।"

"मैं गलत आदेश मानने के लिए मजबूर नही हू।"

प्रिसिपल सहम गये "गलत कसे?"

"अभी तक तो आप स्वय ही नियमो का हवाला देकर उसका पुन दाखिला गलत ठहरा रहे थे।"

प्रिसिपल का क्रोध हवा हो गया, "मि० सुधीर ! कई बार मजबूरी मे कई काम "

कापती जूबान से फूटे शब्दो का रस लेते हुए सुधीर ने आग पर तेल छिडका, "मैं कोई गलत काम तो नही कर सकता।"

प्रिसिपल पुन सभले, 'आप किसके काम म रोडा अटका रहे है। इन पडित जी को आप नही जानत?"

"इनके काम मे रोडा तो आपने अटकाया है। जब मैं कह रहा था तो आप "

प्रिसिपल ने टोक दिया, "मेरी आपसे रिक्वस्ट है कर लीजिये इसे दाखिल।'

मत्री जी के आगमन पर स्वागत तैयारियो के लिए स्टाफ मीटिंग बुलायी गयी थी।

'सास्कृतिक कायक्रम कौन प्रस्तुत करेगा", त्रिभगी लाल न प्रश्न किया।

'आप लोग जिसका नाम सुझायेंगे', प्रिसिपल का उत्तर था।

त्रिभगी लाल के प्रश्न से स्पष्ट था कि प्रिसिपल कायक्रम सुधीर द्वारा पेश किय जाने के पक्ष मे नही थे। उनके उत्तर न इस शका पर प्रमाण की मुहर लगा दी। प्रश्न व्यक्तिगत सम्मान क धरातल पर अड गया तो सुधीर ने हस्तक्षेप किया,

"प्रोग्राम मैंन तैयार करवाया है। यह मैं स्वय पेश करूगा।"

"यह जरूरी नही", प्रिसिपल ने टिप्पणी की।

"जरूरी क्यो नही", सुधीर न उत्तर दिया, "इस बार मैंन तैयार करवाया है तो मैं ही पेश करूगा। भविष्य मे जिसे पेश करना हो, वह शौक से तैयार करवाये।"

एक सीनियर साथी ने तर्क दिया, "यह तो जरूरी नही कि जो तैयार करवाये वह पेश भी करे।"

अब सुधीर ने गुस्से म कहा, 'जो कोई चाहे पश कर पर मैंने जो कायक्रम तैयार किया है वह केवल मरे ही द्वारा पेश होगा। अन्यथा यह कायक्रम पेश ही नही होगा। आप खुशी से नया तैयार करवा लें।"

चुनाव जीतने के बाद दरबारी लाल मत्री बनकर ही स्कूल म आये। सास्कृतिक कायक्रम प्रस्तुत करते समय सुधीर क सामने एक बडी मुश्किल पेश आयी।

यह कठिनाई सुधीर ने प्रिसिपल रामस्वरूप को बतायी तो वे क्रोध से चीख पडे, "यह क्या बचकानापन है। आप ऊपर के आदशो के अनुसार चलते रहिये।"

सुधीर अडे, "यह स्कूल के विद्यार्थियो का मच है।"

"आपका अन्न जल यहां से उठ गया लगता है, मि० सुधीर!"

आपके तबादले का आदश है, मि० सुधीर! इसे नोट कर लें और अपना चाज मि० कश्यप को सौंप दें।" इसका पूर्वाभास होते हुए भी सुधीर का क्षणिक झटका सा लगा पर वे शीघ्र ही सभल गये।

तीन दिन चार्ज सभालने मे बीत गये। चौथे दिन उनकी विदाई मे जलपान का आयोजन था। साथी लोगो न तबादला हो जान पर सवेदना प्रकट की तो प्रिसिपल रामस्वरूप ने हस्तक्षेप किया, "ट्रासफर तो अपका कैंसिल हो सकता है पर दरबारी लाल जी की टांग के नीचे से गुजरना पडेगा।"

ऑफिस मे बैठे लोग अब तक सभलते सुधीर ने चीते की सी फुर्ती से झपटकर प्रिसिपल को गिरेबान से पकडा और तीन चार झापड रसीद कर दिये। इस उपक्रम म कुछ कप प्लेटें टूट गयी और गम चाय मेज के सुनहरी कपडे पर फैलने लगी।

फिर शुरू हुई अनुशासनात्मक कायवाही। सातवें दिन विभाग द्वारा उनके निलबन आदश जारी कर दिये गये।

आखिरी पन्ना

मुशी शिवलाल को जब होश आया तो धरती गहन अधकार की परत मे लिपटी थी।

जीवन विश्राम की गोद म अगडाई लेने लगा था।

वे कसमसाकर उठे। बिजली का बटन ढूढकर बत्ती जला दी। उ हे लगा आख या रेटिना जलकर राख हो जाएगा।

आख फाडती इस रोशनी म कमरे की धूल धूसरित नीली दीवारें, पानी खोए मलिन दपण सी श्रीहीन लग रही थी। कमरे का क्षेत्रफल नापता मोटा काला कालीन, जो उ होने अपनी पटवारीगिरी के दौरान किसी माटी सामी स उपहार स्वरूप पाया था, फन फलाए नाग की तरह उ ह डसने आता हुआ प्रतीत हुआ। किसलिए पालता है आदमी इन सब फनिहार विषधरो को वे सोचने पर विवश हैं अपने तत्कालीन अधत्व पर जब सरकारी नक्शो पर एक लाईन इधर स उधर कर देने भर से, एक नही असख्य कालीन सरकारी मुलाजिमो के घर के कमरो का क्षेत्रफल नापते हैं।

घृणा की सरिता पूरे आवेग स उनके भीतर उमड आई।

दूसरे ही पल उन्होंने बत्ती गुल कर दी।

अ दर का अधकार बाहरी अधेरे से एकात्म होकर, तोप का कितना बडा स्रोत हो सकता है यह अहसास तो उ हे आज ही हुआ।

घर के किसी कोने म जीवन का कोई लक्षण सास नही ले रहा था मन का कोई कोना अब भी बुलबुला रहा था। कही सचमुच ही वे पर नही! उ होंने मन को सात्वना दी ऐसा नही हो सकता। वे उ हे अकेला छोडकर नही जा सकते, भावुकता मे बेटा बेवकूफी कर गया है, पर नेह की सरिता सूख नही सकती। मद वेग से ही, गतिमान तो उसे रहना ही है। वह सिफ जवानी की उच्छ खलता थी या शायद नशे का असर! बाप बेटे के बीच सम्ब धसूत्र इतने ढीले नही हो सकते।

मुशी शिवलाल ने पुन प्रकाश किया जो चाकू की तरह उनकी ओर लपका।

घायल हिरण से व हर कमरे म गए।

घर श्मशान था।

बेटा, बहू, पाता काई भी तो नही था।

उन्हे लगा ब्रह्माण्ड घूम रहा है। ससार नाव की तरह सागर के तूफान म हिचकोले खाने लगा है।

भौं भौं भौं

लालू या !

उनका अपना कुत्ता, जिसकी पहचान पारिवारिक सदस्य की तरह थी।

वे कमरे मे बाहर आ गए।

घने अधेरे से हाफना हुआ लालू उनकी टागो से लिपटने लगा, मानो मातत्व स्नेह से वचित कोई बालक स्नेह के सागर मे उतरन पर उतावला हो।

सन्नाटा खिचे अधकार मे लालू की "गू, गू" हवा के साथ उड रही थी।

मुशी शिवलाल सन्नाटा चाह रहे थे, पर लालू उनके स्नेहासिक्त व्यवहार के लिए उतावला था। आखिर जानवर की जरूरत ने आदमी की जरूरत पर विजय पई।

'क्या बात है रे, लालू ?"

एक तीव्रतर होती 'गू, गू" और मुशी की टागो से अधिकाधिक लिपटाव !

तेरी सास क्यो फूल रही है ?"

लिपटाव ! बस लिपटाव ! "आ चल भीतर", वे बाल।

भीतर बत्ती के प्रकाश म मुशी ने देखा उसकी आखो स कोई गाढा द्रव निरन्तर प्रवाहित है, मूछ के दो लम्बे बाल फटक रहे हैं। कुछ कहने के लिए आतुर गूगे आदमी के होठो की तरह।

"लालू, वे कहा है ?"

व्याकुल लालू कमरे का चक्र काटने लगा। सेना के किसी खोजी कुत्ते की तरह ! कमरे के कण कण को सूघता हुआ।

शायद कुत्ता भूखा हो। मुशी रसोई म आए। मक्की की रोटी का एक पुराना टुकडा उनके हाथ लगा।

लालू ने उस दखन स इकार कर दिया।

उसके चेहरे पर विषाद की एक परत गहरा गयी थी। दीवार के साथ एक पुरानी सदूक सटी थो, वर्षो से, जिस पर गद की परत जमी हुई थी पुरानी फोटो स्मतियो की तरह। ताले मे जग लगा हुआ था। मुशी उस पर बठकर बीडी सुलगाने लगा।

मानो किसी सास सकट स ग्रस्त, लालू तेज सासें भरता हुआ सामने फश पर

एच० एम० बी० की मुद्रा म बैठ गया ।

सामने धरती पर बहुत सा पुराना धूल सना सामान पडा था। मुंशी की दृष्टि एक पुरानी बोतल पर टिक गयी—उन्होने उठकर बोतल खीचली। काले कवरवाली एक डायरी फश पर गिर गयी। उन्होने झुककर उसे उठा लिया। यह तो वही डायरी है मार्मिक क्षणो म जिसका वे प्रयोग करते रहे हैं। उ हे आश्चय हुआ अभी तक इस ओर उनका ध्यान क्यो न गया था।

लालू ने अपनी मुद्रा भग कर ली और बोतल को सूघने लगा। तब तक मुंशी का ध्यान डायरी स उचककर पुन बोतल पर आ गया था।

"पुराना माल है," वे बुदबुदाए," तीन वर्षों से इसे छुआ नही है।"

' तू भी गम गलत करना चाहता है !"

उसका तसला लाकर, उन्होने उसमे थोडी-सी डाल दी। उसने तनिक सा सूघकर नाक चढाया फिर चप चप चाटने लगा। मु शी ने गिलास उडेल कर बिना पानी मिलाए स्वय भी चढा ली।

एक पैनी छुरी उनके हलक से नीचे उतरकर मेदे को कुरेदने लगी।

"पुराना माल तेज होता है, रे लालू ! '

एक पग और गटक वे पुराने सदूक पर बैठ गए।

लालू अपने हिस्से का माल छककर पुन बोतल की पारदर्शी दीवार को अपनी दृष्टि से भेदने लगा था।

"और लेगा ह ह ह बेटे, कर ले गम गलत चगा माल है "

सहसा वे गम्भीर हो गए।

"मरी जात आदमखोर हो गयी है, आए लालू के बच्चे। '

"कुत्ता गिरी किस रास्ते से भागकर घुस गयी आदमी की रग म ?"

गऊ गऊ गऊ !

"किसी को किसी का विश्वास नही रहा।"

"बाप बेटे से और बेटा बाप से शकित है "ऊचे स्वर म कह रहे थे मुंशी।

' क्या कू' 'कू' लगा रखी है तूने मूख ! ' वे चिल्लान लगे, "तू मुझ पर विश्वास करता है मै आदमी हू ह ह ह पल भर मे तेरा गला घोट सकता हू "

अजीब सी मुद्रा म उनके हाथ चलने लगे थे।

लालू भयभीत सा एकटक उन्हे दखता रहा।

"हा, मेरे पास ताक्त है मैं आदमी हू आदमी ! कई कुत्तो का खून कर सकता हू पल भर मे "

"कुत्ता होकर भी मुझ पर विश्वास करता है आज तो आदमी का अपना

विश्वास जमकर नष्ट हो गया है कोई आंच इसे नहीं गला सकती।"
"राख पर मिट्टी का तेल डालकर उस पर आग लगाने से क्या होता है ?"
"बोल बे कुछ तो बोल "
फिर तंद्रा उन पर हावी होने लगी।
बुड़बुड़ाते हुए सदूक पर लुढ़क गए।

उनकी आंख जब खुली तो सियार गांव के पास बहुत निकट आकर बोल रहे थे। काली डायरी निस्पंद लाश की तरह फर्श पर पड़ी थी और लालू नींद में खर्राटे से भरता बेसुध पड़ा था।

मुंशी ने महसूस किया, अंग अंग दुख रहा है, वे कोशिश से उठे और डायरी के पन्नों पर दृष्टि जमाकर अतीत की स्मृतियां कुरेदने लगे।

11 नवम्बर, 1966

शीतल !" मेरे कदम घर में पड़ते ही अम्मा तुम्हें पुकार उठती थी, "आ गया शिवी ! इसको संभाल ले जाकर, बाकी काम बाद में हो जाएंगे।'

तुम हिरनी की सी चौकस आंखें लेकर दौड़ी चली आती थी

आज तुम्हें गए हुए तीन महीने बीत गए, शीतल ! पर मुझे लगता है सदियां बीत गयी हैं, जैसे स्वप्न में तुम कभी मेरे जीवन में आयी थी। मेरे दिमाग के पर्दे पर लगातार धुंधलाती जा रही यादें तो यही अहसास देती है कि आज तक मैं तुम्हें शायद काफी कुछ भूल गया होता, पर तुम्हारा अश्विनी एक ऐसी याद है मेरे पास जिसका मासूम चेहरा मुझे हर क्षण तुम्हारे अस्तित्व की स्मृति करवाता रहता है

जीना मेरे लिए पहाड़ हो गया है। इतने बड़े जहान में मैं अकेला हूं। पता नहीं किन पापों की सजा है जो मैं भुगत रहा हूं। तुम्हारा सुख कर साथ पाने के बाद, एकाएक गहन निर्जन में भटक जाना एक कांटा लगातार छाती में चुभ रहा है। काश ! मेरे जीवन में कभी बहार आई ही न होती तो इन ठूंठों में भटकते हुए इतना दर्द तो न होता

पर तुम्हारी आखिरी याद इस मुन्ने के लिए सब दर्द सहूंगा। शायद इसी से तुम्हारी आत्मा को तृप्ति मिले

8 जनवरी, 1967

'अम्मा, तुम आखिर कब तक रोती रहोगी।"

"बेटा ! अभी तेरी उमर ही क्या है फिर कर ले ब्याह ," रोज ही के

अलाप पर उतर आई थी अम्मा !

"कर लूगा तू जरा धीरज तो धर !"

पर शायद उसे मालूम है मैं उसकी आकाक्षा पर खरा नही उतरूगा।

अम्मा की आखें बैठ गयी हैं, रो-रोकर । ऐसा नही है कि वह अब तुम्हारे लिए ही रोती हो हा ! तुम्हारे लिए रोई थी जरूर, तुम्हारी मौत के शुरू वाले दिनो मे। पर इसम फर्क नही पडता कि तुम उसकी बहू थी और तुम नही रही थी। तुम्हारी जगह जो भी उसकी बहू होती। उसकी मत्यु पर वह वैसे ही रोती उस वक्त वह बहू की मौत पर रोई थी। आज बेटे के भविष्य मे फैले अधकार पर रोती है। शायद वह तुम्हे आज तक भूल भी जाती, पर मेरे भविष्य का प्रश्न उसकी आखो पर क्रूरता से नाचा है।

उसकी हार्दिक इच्छा है (जिसे हर क्षण वह तोते की तरह रटती है) कि मैं पुन शादी कर लू। आज प्रात भी वही हुआ था। अब तो सम्बन्धी और मित्रगण भी दबाव डाल रहे हैं।

शीतल !

यह सच है कि आजीवन मैं तुम्हारे नाम की माला जपकर नही जी सकता। यू अम्मा का कहना गलत नहीं है कि आखिर मेरी उमर ही क्या है। मेरे अरमान अगडाइया लेते हैं। पल पल करवटें बदलते हैं पर मैं उनका खून करने पर तुला हू। तुम्हारे लिए या अपने लिए न ! कुछ नही ! सिर्फ इस पुत्र के लिए जिससे मा का आचल छीनकर प्रकृति ने न्याय नही किया।

इसके सिर पर सौतेली मा का बोझ अकारण लाद दू।

मन नही मानता।

पर लगता है अम्मा को भी मैं खो दूगा। पुनर्विवाह की रट म वह अधिक दिन नही जी पाएगी।

27 मार्च, 1967।

धुधले चित्रो के उडे रग की तरह समय मुझे व्याकुल कर रहा है।

अम्मा का प्रस्ताव मैं खोटे सिक्के की तरह फेरता रहा था। मैं समझता रहा मैं जीत रहा हू और अम्मा हार मानकर क्रमश चुप होती जा रही थी, पर नही वह जीत गयी शीतल ! मैं ही अपनी मा का हत्यारा हू। मैं उसकी आखिरी इच्छा भी पूरी न कर सका।

अब तो चूल्हे पर अपने हाथ सेंकने होगे।

यह इच्छा प्रबलतम रूप मे जागती है, काश ! मेरा भी कोई साथी होता। पर जब अम्मा के जीते जी दूसरी शादी न कर सका तो अब उसके मरने के बाद ऐसा कर उसकी आत्मा को क्या दुख दू। एक रोज ऐसी आशका उसने जाहिर की थी

"मैं जानती हू शिवी, मेरे मरने के बाद तू जरूर ब्याह कर लेगा।"

"तू तो एक सौ पाच साल जिएगी, अम्मा !"

"हा रे मैं अमर हू, मरूगी ही कहां ?'

चट्टान की परतों मे खिसकती जल धार सी कलेजे म उतर गयी थी। नाराजगी का स्वर पुन लपका था, "बेटे, दुनिया किसी के मरने जीने से नही रुकी है, वह अपनी चाल से चलती रहती है।"

शायद उसकी बात सच थी।

"तभी कहती हू मेरे जीते जी कर ले ब्याह इस खुशी म चार दिन और जी लूगी।"

पर मैं उसे चार दिन नही जिला सका था।

नन्हे अश्विनी का चेहरा दीवार बनकर खड़ा हो जाता था और अब तो अम्मा की आत्मा की सौगन्ध

15 अक्तूबर, 1967।

मेरे सिर पर एक विशाल आकाश पसरा पड़ा है, नीला, निरभ्र आकाश !

जो अनावृत सत्य है। लघुता गुरुता के भेद से शून्य। उसने बूद को भी उसी प्रकार ढका है जिस प्रकार समुद्र को।

मैं समझता था पटवारीगिरी की सरकारी नौकरी के बिना जीना पहाड़ हो जाएगा, पर वह मेरा भ्रम था। परतन्त्रता की उस जजीर से मुक्ति पाकर यह सत्य अनावृत हुआ है कि कही कुछ भी जरूरी नही है। व्यक्ति तो पानी की बूद से भी गया बीता है।

अस्तित्वहीनता के इस बोध मे आकाश की विशालता से साक्षात्कार हुआ है।

नौकरी छोडने के बाद तहसील दफ्तर के बाहर मुशीगिरी करने लगा हू। कम से कम ईमानदारी की कमाई का अहसास तो हो रहा है। था तो आदमी ही अर्थ से झुलसा जाना मेरे लिए अनोखी बात नही थी उस पटवारीगिरी मे पर लगा था उस पाप की कमाई का बोझ मुन्ने के सिर पर लादना अनुचित था।

शीतल, नौकरी छोडकर मैंने बुरा नही किया।

अब कही मजदूरी भी करनी पड़ी तो मन कुठित न होगा।

लालू फर्श पर पसरा "गऊ गऊ" करता उठ खड़ा हुआ।

'खुल गयी नींद, बे ?" मुशी ने उससे पूछा "ह ह ह शायद सरूर उतर गया है।"

लालू ने अपनी मुद्रा अपना ली वही एच० एम० वी० वाली !

"ठहर वे तनिक अतीत के पन्ने पलट लू।"

6 फरवरी, 1973।

शीतल! अहसास कचोटने लगा है कि मैंने पुन शादी न कर शायद कोई भयकर भूल कर दी है। कारण मैं क्या जानू यह सब क्या हो रहा है। जीवन के हर विचार, हर भाव, हर क्रिया के पीछे कोई कारण हो ही, यह जरूरी नही। मात्र मन क पक्ष मैंने महसूसे हैं, उस टागें है ही नही!

मुन्ना तरह वर्ष का हो गया।

उसम विद्रोही स्वर प्रखर होकर बाल रहा है। कभी तो मन म गम्भीर आशका का वृत उभरता है। शायद मन की कोई निबल कचोट कचोटती हा।

पर आकाक्षा तो ह ही कि मुन्ना महानता के शिखर छूए। अपना और मरा नाम राशन करे।

तुम्हारी स्मृति की निरन्तर धुधलाती जा रही रोशनी पर अब अधकार हावी हाने लगा है। कोशिश कर रहा हू, प्रकाश की अतिम किरण भी बुझ न जाए।

30 जून, 1976।

देश मे आन्तरिक एमरजेंसी लगे वर्ष भर हो गया है।

मन करता है सरकार के खिलाफ दो एक नारे लगाकर जेल मे बद हो जाऊ। वही शायद मन को शान्ति मिल जाए। मुन्ना ने घर के सन्नाटे मे अशान्ति की हवा प्रवाहित कर दी है। हर बात म वह बुराई देखता है और हर बुरी बात के लिए मुझे दोषी मानता है।

जी करता है तहसील दफ्तर के बाहर ही रात भी गुजार दू पर घर तो जाना ही होता है।

मुन्ना क लिए खाना पकाना, उसके कपड़े धोना, प्रैस करना, उसके बूटो मे पालिश कर उसे कालिज के लिए तैयार करना

खीचती है यह मजबूरिया मुझे घर की ओर।

पर पहले जहा इस घर का सन्नाटा अन्तर की ज्वाला मे घी डालता था आज यही की सिहरी हुई अशान्ति कलेजे का दग्ध कर डालती है। ऐसा समुद्र बन गया है यह घर जो अपनी चुप्पी मे भी हजारा तूफान समेटे रखता है।

27 जुलाई, 1979।

उड रहे है पन्ने!

चारा ओर ज्यो अशान्ति का साम्राज्य हो।

देश की सरकार, आसमान म उडते बरसाती मेघ चारा आर के जगल, आदमी का विश्वास सभी पख लगाए हुए है।

शीतल ! तुम्हारा यह घर और शिवो उद्दाम नदी के प्रवाह मे घुमडते भवर म फसे हैं आज।

मुन्ना मुझसे बहुत कम बोलता है। प्राय उसी तरह जसे बड़े घरो के शहजादे अपन नौकरा स।

खैर ! उसके खाने पहनने और जीने की उमर भी है।

मुझे ता अपने भीतर का क्षोभ सालता है।

15 अक्तूबर, 1983।

शीतल ! तुम होती तो कितना खुश होती आज।

नौकरी लगने के बाद तुम्हारा मुन्ना बहू लाया है।

कितना उत्तेजना और हर्ष से भरा दिन है, पर मरे भीतर आज भी एक अधकार लकडी कुरेदन वाले कीडे की तरह घुमड रहा है जो आडे तिरछे मेरी खुशी को काटन म प्रयासरत है।

20 जून, 1986।

लू चल रही है आज दिन से ही।

तहसील प्रागण मे दिन भर झुलसता रहा था। आज आधी रात बीत गयी पर नींद कही पास नही है। बहू के अनापक्षित व्यवहार का क्षाभ साल रहा है। वह इस घर से तग है। यू तो बच्चो के खाने खेलने के दिन हैं कही भी रह खुश रहें। पर पात के बिना तो मैं पल भर भी जी न पाऊगा। वह मेरे जीवन का सबल है।

बहू शायद अश्विनी के व्यवहार का अनुकरण करती है। वह ता हमशा मरे साथ रूखा रहा है। पर नहीं, बहू का ऐसा व्यवहार सहनीय नही है।

21 जुलाई, 1986।

कई दिन से बहू गाव भर म मेरे विरुद्ध कुत्सा प्रचार मे सलग्न है। पर जीते जी मत्यु जीवन का नही हरा सकती।

प्रात मैंने उससे पूछ लिया, "बहू ! तुम मेरी निंदा करने मे सुख पाती हो ?"

वह प्राय भडक उठी थी, "चौबीस घण्टे आपकी चाकरी करती हू फिर भी आपका मुह टढा ही रहता है।"

"मै तुम्हारा ससुर हू, तुम्हे तमीज से बात करनी चाहिए।'

"मैं जर खरीद नौकरानी नहीं हू।"

बात बढ जान से पहले मैंने उसे साफ कर दिया कि वह मुझसे कुछ कहने की अपक्षा न ही बोले तो बेहतर है।

"तू क्यो जाग रहा है, मुआ ?" गमगीन लालू का मुंशी ने पूछा। वह पास आकर लिपटने लगा।

"बेटा! यही जिंदगी है   बुढऊ इसके पन्ने पलट कर ही जीते है,' सदूक पर से उठते हुए वे बोले, "चल सो जाते हैं। पर ठहर जरा   "

"   कहानी खतम हुई, उसका आखिरी पन्ना तो रग लू।"

आज 21 सितम्बर, 1986।

काली अंधियारी अमावस्या की रात।

दिन म जोर की बारिश हुई थी।

बारिश थमने के बाद आया अश्विनी का वह लडखडाता रूप

"मुझे विश्वास नही है कि आप इतने गिरे हुए इन्सान हो सकते है।

"गिरा हुआ इन्सान   ?" मुशी मुह मे बुदबुदाए।

'आपको बाप कहते हुए मुझे शम आती है।"

मुशी हतप्रभ।

'बाप कहते शम आती है।   पर क्यो ?"

"यह भी बताना पडेगा ?"

'बताना तो पडेगा ही बेटे, तभी तो पता चलेगा   "

अश्विनी टोककर तमक गया 'बहू तो बेटी के समान होती है।'

मुशी शिवलाल की निगाह फट गयी।

'बहू बेटी की समानता का पाठ तू पढाएगा मुझे ?"

'चुप रह, नीच,' बादल फटकर ताडव मचाने लगा था, 'कमीनो को पाठ कौन पढा सकता है।"

दिमाग की फटती रगो को मुश्किल से सभालते हुए मुन्शी के सूखे गले से आ रही आवाज वातावरण म खो रही थी।

"तू ही मेरा बाप रहा पर पता भी चले मैंने कौन सी कमीनगी कर दी है।'

'अपनी बहू पर हाथ डालने स बढकर कोई कमीनगी भी होती है   ।'

मुन्शी शिवलाल को लगा कोई मूक चलचित्र चल रहा है उनके सामने जिसकी ध्वनि कही खो गयी है या उन्होने ही अपनी श्रवणशक्ति खो दी है।

कुक्करमुत्ता

चार का गजर खनका ।

स्कूल म छुट्टी के साथ समस्या राज की तरह मुहबाए खडी हो गयी। औपचारिकता निभाने क्वाटर जाना होता है फिर दिशाहीन होकर दरवाजे पर ताला मारकर पुन भटकने के लिए निकलना होता है बाहर। अदश्य रास्तों पर जहा कोई लक्ष्य न हो। जीवन का कुछ उद्देश्य ही न हो और साथ हो एकात एकाकी जीवन। जिन्दगी की परिणति पहाड हो जाना फिर स्वाभाविक ही है।

कदम धीरे धीरे, अनमने से क्वाटर की ओर बढ चले। आखिर मटरगश्ती का भी कोई तो समय होना ही चाहिए।

दरवाजा लाघते लगा किसी लम्बी अधेरी, स्याह सुरग म प्रवेश पा रहा हू जिसके भीतर की हवा भी यही अहसास देती है मानो किसी बद बक्स को महीनो के बाद खोला गया हो, और बेजान दीवारें तो मानो आपस म षड्यत्र भरी कोई कानाफूसी कर रही हो। अस्त व्यस्त कमरा। कोई तरतीब नही। सफाई किए हफ्तो बीत गए। अनुशासनहीन सा मेरी अपनी जिन्दगी से मिलता जुलता। भीतर की हर चीज फटी पुरानी टूटी फूटी है या गद की एक निरतर गहराती जा रही पत जमी है उस पर। इतना साहस नही जुटा पाया कभी कि इस पर्त को पोछ डालू, टूटे हुओ को जोडना तो बहुत कठिन होता है।

तबादले के बाद जब यहा आया था तभी से गम्भीरता का आवरण ओढे समय को अपने एकात की आरी से काटने म लगा हू। निरतर बाहर से आदमी जो दिखता है, भरा पूरा वह जरूरी नही भीतर भी वैसा ही हो। यहा आते ही मैंने पक्का निणय कर लिया था कि अब मुझे यू ही जीना है कटकर अपने भीतर गहराती जा रही धुध की परतो को खोलने का मेरा कोई विचार नही था। आदमी जब किसी के निकट जाए तो वे परतें अपना परिचय खुद ब खुद देने लगती हैं। इस भय म भयभीत होकर मैंने अपने चारो ओर गभीरता का जामा जरा कठोरता से कस लिया था।

पिछली स्मतिया भूल जाती हो, ऐसा तो नही है। हा भुलाने का एक स्वाग

ता भरा ही जा सकता है, किसी को उनमे साझी न बनाकर। और मैं दृढ था कि मुझे किसी को कुछ नही बताना है। इसम सिवा स्वय को औरो की दृष्टि मे ओछा करना व अपने आत्मसम्मान का कद न्यून करने के अलावा रिसरिस कर जीने से अधिक कुछ भी नही।

कमरे मे घुसकर मैने दरवाजा बद कर भीतर से कुडी लगा ली ज्यो किसी के आ जान का खतरा हो। यहा कभी कोई नही आया, पर मन पर आतक की परत तब भी जमी ही हुई है। कोई यहा आए और मरे भीतर झाककर मुझे टटोलन का प्रयास करे, यह कतइ गवारा नही था। अधेरे बद कमरो म जीने का भी कोई आनन्द तो होता ही होगा शायद।

बिजली का स्विच ऑन करने पर कमरे मे फैला उजाला कचोटने लगा। मैने खिडकी पर पडा पर्दा तनिक सा खिसका कर बत्ती गुल कर दी। खिडकी के शीशे से छनकर, परदे का चीरता हुआ झीना प्रकाश कुछ यू लगा मानो पेडो के झुरमुट से ढकी किसी घनी घाटी म वर्षा के बाद के छटत बादलो मे से चाद झाक रहा हो।

भूमि पर रेंगत कछुए की तरह जिसने अपनी गर्दन अपन कवच म समेट रखी हो, मैं कमरे के सन्नाटे म चहलकदमी करने लगा। भीतर रसोई म कुछ गिरा। शायद बिल्ली ने कुछ गिरा दिया था।

दूध का गिलास गिरा कर वह खुद भाग गयी। सफेद दूध फर्श पर पुतली की सी तेजी से दौडता अपना गतव्य खोज रहा था और शैल्फ पर स गिरा गिलास टुकडे टुकडे हो गया था।

मैं उन टुकडो को समेटने लगा, बिल्ली के प्रति एक अजीब किस्म की खिजलाहट लिये। एक कुठा बन गयी है। शायद जीवन ने मुझे ठगा है। पिता की रुखाई, विमाता का अपमानित करने वाला व्यवहार और पत्नी द्वारा तिरस्कृत आदमी कुठाए तो उसकी नियति हैं। लगता है मेरे लिए मै हू या यह दीवारें, फटा पुराना, टूटा फूटा गद जमा यह सामान। यही कुछ मेरा है उधर स्कूल है। भीषण शोर से सना ! हो-हल्ला, घटी बजते ही भागम-भाग जैसे बहुत से रोबोट आदेश मिलते ही अपने अपने काम पर दौड पडे हो। मशीनी मानवो का समूह ! अध विक्षिप्तो की दौड का सा दृश्य।

सहयोग के नाम पर एक बडा वर्ग तैनात है। मैली मिट्टी मे उगी बरसाती खुब सा। अपना कद बढाने की होड दो चार अश्लील गप्पें। एकाध भौडा मजाक यात्रिक सी हसी और पैसा बटोरने की सतत होड। किसी के पास अन्य की भावनाओ का समझने-सुनने की फुर्सत है ही कहा।

कमरे की घुटन से कहीं भाग खडे होन का चित्त हुआ।

खिडकियो के पर्दे सरकाए और दरवाजे पर ताला मारकर बोझिल कदमो से

चल पडा। मन ही मन एक सात्वना की कोई झीनी सी रेखा चमक रही थी। बाहर से अच्छी चमकती सफेद सरकारी बिल्डिंग के भीतर झाकने के लिए कोई छेद तो नही है।

सडक पर इक्का दुक्का वाहन घरघराहट से कभी निकल जाता। यू प्राय नीरव सा वातावरण ही था जो कि मुझे पसद है। फिर भी घने सन्नाटे की इच्छा राजपथ पर कहा पूरी होती है। उधर से सुशील आता दिखा।

सुशील, मेरा सहयोगी!

काफी दिनो से मैं देख रहा हू कि इसकी नजरें मुझे टटोल रही है। इन्सानो की भीड म वह एक ऐसा चेहरा है जो दूसरे की भावनाओ को समझने परखने की कुछ तो क्षमता रखता है। मेरे मुख पर चढे गभीरता के मुखौटे को उसकी तीखी दष्टि ने कितनी ही बार बेंधने की कोशिश की है।

इस समय स्थिति कुछ एसी ही आ पडी थी कि उसस फिसलना कठिन था।

उसकी मुस्कराहट म एक चुनौती थी। दूसरो को जीत लेने की चुनौती। बदले म मैंने भी एक बेबस सी मुस्कान उसकी ओर फेक दी। प्लास्टर स कसे एक जख्मी आदमी की सी मुस्कान!

"हैलो राकेश! घूमने निकले हो?'

इसस अधिक वह पूछ भी क्या सकता था।

मूड बात करने का कतई नही था, पर यहा बात करना ही विकल्प था।

' टहलने की इच्छा थी निकल आया।"

"बहुत अच्छा है घूमने से जरा जी बहल जाता है।"

फिर मेरा हाथ थामकर प्राय घसीटते हुए से कहने लगा, "पास ही मेरा घर है। जरा चलकर बैठो थोडा बातचीत करेंगे।"

टालने भर के लिए मैंने कहा भी, ' फिर कभी आऊगा," पर उसके आग्रह की सबलता के समक्ष मुझे अपने सकल्पो की लघुता का आभास सहज ही हुआ।

' चल यार!"

तब तक कदम मुड चुके थे।

।

सुशील के विपरीत उसकी पत्नी कानन के चेहरे पर भावना प्राय मरी मरी-सी थी। काले समुद्र के ऊपर तैरते जहाज पर सवार यात्रियो के ठोस चेहरो की तरह जिन्होने महीनो से जमीन न देखी हो। स्कूल मे भी देखता हू, सुशील खूब मिलन सार व हसने-हसाने वाला आदमी है, वही कानन प्राय चुप चुप सी, गभीरता के आवरण म लिपटी भावनाओ के बबाल को भीतर सफलतापूर्वक समेटे, एक अजीब सा उदासी भरा चेहरा सभाले रहती है। पुरुष प्रधान समाज मे यह आवरण एक सम्भ्रात महिला के लिए उचित हो सकता है, पर उसे तो मैंने स्कूल मे भारी

समाज के बीच भी इसी रूप में देखा है।

सुशील एक दौडती भागती नदी है! उफनती नदी! उछल-कूद मचाती, साहिल पर पडी हर वस्तु को स्वय म समेटती। दूसरो को अपना बना लेने की एक शातिर सी क्षमता म भरा चेहरा। और कानन एक अथाह सागर की तरह गम्भीर, जिसमे कभी कोई लहर नही उठती, कभी कोई तूफान नही आता, कितनी ही उफनती नदियो को समेट लेती है यह खामोशी!

शायद व्यक्ति व्यक्ति की स्वाभाविक विशेषता मानकर मैं अन्वेषण की आवश्यकता नकार गया। पर नही, यह अत नही आरम्भ था। एक अत का आरम्भ। हर अ त क बाद एक शुरुआत होती है, जिसकी परिणति एक अ त म होती है अ'र पुन आरम्भ, अ त और आरम्भ! आरम्भ और अ त! जीवन की तीसरी सीमा क्या है? यह आरम्भ या अन्त जो भी हो, एक सुलगती हुई चिंगारी थी जिसका बाझ, व्यथ ही सही, मैं जाने अनजाने बाद म भी कई दिन तक ढोता रहा था।

तिपाई हमारे सामने खीचकर, कानन चाय रख गयी। पल भर के लिए मेरी दृष्टि उसके चेहरे पर गयी। वही भावहीन व प्रतिक्रियाहीन आखें थी। रास्त मे पडे पत्थर सी मैंने आखें फेरकर सुशील की ओर देखा। सेकिड से दसवें हिस्से से भी कम समय के लिए नजर एक हुई। सच या झूठ, ठीक से तो नही कह सकता, पर एक गहरी उदासी का भाव उसके नेत्रो मे तैरता हुआ मुझे दृष्टिगोचर हुआ। उसने दृष्टि फेर ली थी और तिपाई की तरफ हाथ बढाकर, "लो, चाय पिओ" कह रहा था पर उस अनजानी उदासी को उसके नेत्रो से बाहर निकल मैंने उसके चेहरे पर फिसलते देखा।

कानन चली गयी थी और अगले ही क्षण सुशील मुस्करा रहा था।

जादूगर!

कितना बडा जादूगर होता है आदमी!

शायद मेरा भ्रम हो, पहली दृष्टि प्राय गलत भी तो हो सकती है, पर उसकी आखो मे मैंने जो एक सैलाब देखा था उसे चाहकर भी नकारने का मन न हो रहा था। तो क्या उसके भीतर भी एक चैनल चल रही थी, जिसे छिपाते कभी, चाह पल भर के लिए ही सही, असफलता उसे छूने लगती है। मेरे लिए यह एक और मार्मिक मौका था। भीतर की चैनलें देखना समझना और इतना शीघ्र किसी निष्कर्ष पर पहुच पाना भ्रामक हो सकता है। यह तथ्य मेरे दिमाग म लगातार आकार पाता एक गुब्बारे की तरह उभरा। फिर आसमान की ओर दौडता दौडता क्षितिज म खो गया।

हम दानो चाय सुडकने लगे ज्यो दो मेढक टरटरा रहे हो। चुपचाप। अपने-अपने प्यालो म खाये से। अपने अतर के अकले पथिको की तरह कानन द्वारा चाय

लेकर आने से पूर्ण बतियाने का जो अथहीन सिलसिला चला था उसके आ जाने, फिर चले जाने के बाद कितनी ही देर तक टूटा रहा था, कमरे की दीवारों से लिपटी यह चुप्पी मुझे भीतर ही-भीतर डसने लगी थी।

'स्कूल का वातावरण तो बहुत घुटा घुटा सा है" शायद खामोशी को तोडने के लिए वह कोई विषय पकड पाने की कोशिश म था।

सडिप ! एक चुस्की गले से नीचे धकेलकर मैंने उसकी ओर देखा। उसके चेहरे की बारीक रेखाओ पर अभी भी कुछ कालिमा मौजूद थी जिसे मोटी नजर तो शायद ही देख पाती। बाकी चेहरा सपाट था। इस कथन के अवसर पर मन म उभरा अवसाद ध्वनित हो रहा था।

' ठहाके तो खूब लगते हैं !"

"ठहाके ही बस!" उसने एक जबरन मुस्कान चहरे पर लाकर उत्तर दिया, "अन्तर के उफान को कौन जानता है जानने की कोशिश भी कौन करता है।'

वह अपनी व्यथा की कोई परत खोल रहा था अथवा मेरे भीतर झांकने के प्रयास म जाल बिछा रहा था, ठीक से कुछ नही कहा जा सकता। हां, उसके सपाट चेहरे पर एक अदृश्य धुध मुझे जरूर दिखी। जगल म छाई बरसाती धुध, जो न छा जाने मे अधिक वक्त लगाती है न छट जाने म।

' मैं तो समझ रहा था सुशील, कि तुम काफी खुशकिस्मत आदमी हो।"

"इसम शक क्या है?"

उसकी मुस्कराहट मे बेबसी की परत मुखर होकर बोल रही थी।

'पर मुझे तो लगता है भाई कि तुम्हारे भीतर भी कोई तूफान तो मचल ही रहा है।'

"राकेश, समुद्र शांत होता है न," वह गम्भीर हो गया, 'पर उसके भीतर कितने तूफान हैं इन्हे कोई देख सकता है? कोई कभी कुछ महसूस कर ले सो अलग बात है।'

फिर वह प्राय सहज ही हो गया था।

इसी सहजता के आगोश म लिपटे उसके आग्रह को मैं न टाल सका था। मैं खाने के लिए रुक गया था।

कानन ने खाना दिलचस्पी से ही बनाया था। कम से कम स्वाद तो यही कह रहा था, पर मुझे खाने मे मजा नही आया। खाते वक्त कभी कभी जो एक निर्जीव-सी चुप्पी छा जाती थी मुझे लगता मेरी उपस्थिति के ही कारण यह है, पर शायद यह कानन की उपस्थिति के कारण था। सुशील ने खुद को खाने म उलझा लिया था और कानन ने परोसने खिलाने म। मेरा ध्यान दोनो के बीच खिची तनाव की अदृश्य लकीर पर बरबस खिचा जा रहा था। कौन सी ऐसी दरार है, जिसे किसी

अजनबी की उपस्थिति मे भी वे पलभर के लिए भी पाट नही सकते। मात्र दिखावे भर के लिए भी नही। अजीब सनकी आदमी है यह सुशील भी। कैसा ठहाके लगाकर हसता है, पर पत्नी के सामने आ जाने पर जाने किस गुफा म भटकने लगता है। पति पत्नी के बीच मन मुटाव, मात्र मनोबल नितात प्राइवेट व निजी अनुभूति है जिसकी अभिव्यक्ति, किसी तीसरे के बीच म आ जान पर यह अपमानित करने वाला व्यवहार हो जाता है।

अवचेतन म मैं कानन की ओर कब खिचन लगा था, ठीक से नही कह सकता। मगर एक ऐसे अदश्य धागे से मैं उससे निरतर बधता जा रहा था जो पल प्रति पल सशक्त होता जाता है। ताजा बीजे गए खेत को ज्यो सिंचाई का जल यथासमय मिलते रहने से अकुर फूटकर सतत् बढते जाते हैं।

सुशील मेरा घनिष्ठ हो गया था। बहुधा मैं उसके घर भी गया, खान पान की पार्टिया जमी, खूब खुलकर गप्प शप्प हुई, पर उसने मेरे भीतर की कुछ गाठें खुलवा लेन पर भी अपने भीतर की गाठो को छूने की अनुमति नही दी। कानन से उसका मात्र औपचारिकता का नाता था, यह मुझसे नही छिपा, न कभी उसने छिपाने का प्रयास ही किया। पर असल बात जानने की तीव्र उत्सुकता होते हुए भी, इस प्रसग के मम को स्पश करने का साहस मैं कभी न जुटा पाया।

मेरे मन की गुत्थी ने ही शायद कानन के प्रति पहले ता सहानुभूति उपजाई जो शनैं शनैं स्नेह मे बदलकर मुझे कुरेदने लगी। मै नही चाहता था कि अपने एक अतरग दोस्त के परिवारिक जीवन मे अपनी उपस्थिति का विष घोल दू। यह उसके विश्वास के साथ कुठाराघात तो होगा ही, साथ ही एक परिवार को छिन्न-भि न कर अपना उल्लू साधना मात्र भी होगा। एक गहरा स्वाथ का भाव, जिससे विवेक-बुद्धि बचना चाहती थी।

पर तब तक मै दिल के हाथो मजबूर हो चुका था। यहा मन कहना अधिक उपयुक्त होगा, मेरा मन मुझे मजबूर कर चुका था कि हर घडी मैं कानन को ही देखता रहू। उसे एक दृष्टि देख पाने भर से मुझे अजीब सा सुख मिलता था। यू स्थिति हास्यास्पद सीमा तक बिगड जाने के बाद भी मैं अपने मन पर काबू पाने पर असफल रहा और यह बेलगाम घोडे की तरह स्वच्छद होकर कानन के सामीप्य की ओर लगातार दौडता रहा।

रेगिस्तान मे जी रहे प्राणी की प्रकृति की हरियाली छटा देखने की चाह की भांति सहानुभूति और स्नह का माग तय करता प्यार का जो अकुर कानन के प्रति फूट पडा था, वह स्वय के ही प्रति कुछ भी पाने की चाह अधिक थी। यह सब मात्र अपनी सतुष्टि के लिए था, कानन के हित-अहित से बेखबर और उसके प्यार से निरपेक्ष भी।

जिन्दगी न मुझे ठगा है। बचपन म मा के स्नेह से वचित हो जाने पर स्वभाव म विद्रोह की चिंगारी सुलगने लगी थी। विमाता के आगमन ने उसे हवा दी, रुढ़ियों ने उसे पोषित किया, एक अदश्य बवाल भीतर ही भीतर जमा होता रहा।

जवानी की दहलीज लांघने से पहले ही पिता न शादी कर दी। घर का काम नही चलता था। अनपढ़, भावनाहीन, गवार सी बीबी एव उसस भी विछोह की हवा पाकर विद्रोह का बवाल कब तक दबा रहता।

विवाह के बाद पत्नी को साथ ले जाने का सुझाव पिता से अधिक विमाता के लिए असहनीय था। अपन जीते जी वे बहू को घर से बाहर कदम रखने की अनुमति नही द सकत थे। विद्रोह के लिए उतावले मेरे मन को पत्नी का सहयोग न मिला। मुझस अधिक जरूरी उसके लिए समाज की परपरा थी।

मुझ पर बिजली गिरी थी।

बहुत स सकेत दिमाग मे उभरे बिगडे थे। सोच की एक नयी दुनिया थी जिसम मैं पहुच गया। उसी रात उनीदी आखो की तपिश पर काबू पाने क लिए हृदय म उठे तूफान को भीतर समटे, तडके के अधकार म घर छोड दिया। बस, चलती बार अपनी एक वर्षीय बेटी का मुख चूमा था, जो अपनी पत्नी क साथ मरे शारीरिक सबधो की उपज थी। फिर बेटी से असीम स्नेह के भाव को बलपूवक नियत्रित कर मैं घर के बाहर निकल गया था।

बेटी चदा का स्नेह मरे लिए अध महासागर के ऊपर उडते जुगनू की तरह था पर मैं विवश था। सागरीय अधकार से मुक्ति के लिए बहुत से जुगनुओ का मोह छोडना पडता है।

कानन के प्रति मेरा लगाव स्वय मुझे आश्चयचकित करता है। यू इस वातावरण मे कई महिलाए हैं। जवान, कुवारी लडकिया भी! फिर दो पुत्रो की अधेड मा की ओर मेरा झुकाव कौन सी मानसिक दशा का द्योतक हो सकता है तथा इसे पाने म मैं कहां तक सफल हो सकता हू अपन दोस्त की एक पत्नी के रिश्ते को प्राय भुलाकर मैं क्या कुछ पा सकता हू यह प्रश्न प्राय दिमाग को मथत रहते थे मन मे कुडली मारकर बैठे नाग की तरह। क्यो नही मैं किसी सहज सुलभ प्रेम की तलाश करता?

प्रेम का यह पौधा कुकरमुत्ते की तरह उगता जा रहा था। मन के अज्ञात वीहडो म, जहां बरसात बिल्कुल ताजा थी। मैं कानन की एक झलक के लिए घटो प्रतीक्षा करता था और जब वह दिख जाती तो अगले क्षण की झलक के लिए प्रतीक्षारत हो जाता।

आतो म पलते परजीवियों की तरह यह पीडा मेरे भीतर लगातार पलती रही। कभी जीवनशक्ति को सोखती तो कभी सिंचित करती।

बहुधा सुशील की अनुपस्थिति म भी मैं उसके घर गया। घटो कानन से एकान्त मे बातें करता रहा, पर भीतरी कसक को कभी उडेल न सका। वैसे भीतर की कुठा इतना डस चुकी थी कि उस व्यक्त किए बिना अब कोई चारा नही था।

उस दिन उसके सामने सोफे पर बेचैनी से पसरे हुए मुझे लगने लगा था कि छाती की बाइ पसलियों के भीतर हृदय की धडकन किसी भी वक्त धोखा दे सकती है।

वह शायद मेरी स्थिति भापकर 'चाय लाती हू' कहकर चल पडी, पर मैने उसे राक दिया। 'बठ जाओ, कानन मुझे चाय नही पीना है'।

मैंने उसका नाम पहली बार उच्चारित किया था, पर लगा सदियो से मैं उसे पुकार रहा हू।

वह बैठ गयी।

कमरे म एक गहरा सन्नाटा खिच गया, हवा ठहर गयी थी। दो व्यक्तियो के सासो की धीमी आहट के सिवा बाकी सब शांत।

प्रयत्न की चरम सीमा छूकर एव रक्तचाप पर भरसक नियन्त्रण के बाद मैंने मुह खोला 'कानन। मैं तुम्हे चाहने लगा हू ''

हृदय की धडकन जरा ठहर गयी।

कानन के चेहरे का रग सुख हो गया। उसने नजरें जमीन पर गडा दी थी। म तनिक सहज था, 'तुमन उत्तर नही दिया, कानन।'

उसन अपनी बोझिल पलकें उठाकर मेरी तरफ दखा। इस समय अनिश्चय की भावना का एक सलाव उसकी आखा म उमड पडा था। हमारी दष्टि का एक हो जाना जैसे बिजली की नगी तार ने झटका मारा हो। मैं छत की ओर दखने लगा और वह फश पर।

'कानन '' मैं क्या कहना चाह रहा था नही मालूम पर उसने टोक दिया—'यह आपने क्या कह दिया शायद आपको नही मालूम कि मैं किसी भी पुरुष का प्यार पान क काबिल नही हू।''

उसके चेहरे पर एक धुध गहरायी हुई थी। एक स्थायी उदासीनता न उस चेहरे को ढका हुआ था ''पर क्या?' मैंन प्रश्न दागा।

विवाह के दो वष बाद एकाएक भूचाल आ गया था।

सुशील अपने मुह स जो भी कह सकता था उसने कहा। मारपीट गाली-गलौज व बाल उखाडन का ताता कई महीने तक चला, फिर अचानक चुप्पी छा गयी। वह मरघट की खामोशी थी।

कानन चाहने लगी कि सुशील उस पर पुन अत्याचार ढाए। उस वश्या, कुलटा, बदजात सभी कुछ कहे जो वह कहता था। उस मारे-पीट पर कुछ नही

हुआ।

परवेश को उसने टूटकर चाहा था। कॉलेज का युग था। हर ओर रंगीनी। आयु का वह दौर जब अंधा युग तन मन म उतर आता है। जब होश आया तो अस्मिता टूट चुकी थी। परवेश होनहार सही पर कायर बहुत था। कानन तो आज भी यही समझती है।

कानन का परिवार ब्राह्मणो की श्रेष्ठता के मद म चूर था। वे उसे कभी राज पूत कुल मे जाने की अनुमति न दे सकते थे। परवेश आतंकित होकर दुनिया की भीड म कही खो गया था।

विवाहोपरात कानन को अपने ही घर मे अजनबी बनाने के लिए परवेश क पास उसके पत्र काफी सुरक्षित थे। वे सनद रहे और वक्त पर काम आए।

उसके भाग्य के द्वार फिर कभी नही खुले।

इस एक वष म कानन ने मेरी आखो म तैरता स्नेह का सैलाब न सिफ अनुभव किया था बल्कि अपनी ओर बहते भी देखा था। उसके सूनेपन म हलचल हुई थी। वह मरे प्रति आतुर न सही, पर निरपेक्ष नही थी। ऐसा मुझे लगा।

कानन के प्रति उमडा स्नेह यह जान लन के बाद दृढता स मेरे मन म जम गया। वह परिस्थितिवश सिफ सिमट-सी गयी है। यह मौन प्रक्रिया मेरी सहायक होगी।

'यह जानकर तुम न सिफ मेरे स्नेह बल्कि श्रद्धा की देवी भी हो, कानन !"

उत्तर म उसन एक निरीह अविश्वास की सी दष्टि मरे चहरे पर फेंकी।

मरा भावावेश मुखर था, "अपनी देवी का पूजन का अधिकार चाहता हू।"

"राकेश बाबू ! काटा के रास्ता पर नग पैर चलना बहुत कठिन होता है।"

"मै जीवन भर तुम्हारे लिए तपस्या करूगा।'

"बहुत कठिन तपस्या होगी थककर चूर हो जाओग।"

'कुछ चिंता नही इस बेकरारी म जीना मेरे जीवन की अमूल्य आराधना होगी।"

बटी ड्राइगरूम मे आ गया। उसका छोटा बेटा ! आठ नौ बरस का रहा होगा तब। बहुत चचल सा बालक था। यू कानन से सबध रखने वाली हर चीज स मुझे अपनत्व सा था। और तो और जहा उसके पैर पडते थे वहा की मिट्टी भी स्नेहासिक्त और अपनी अपनी सी लगती थी। फिर बटी और शैली तो उसके बेटे थे। लगता था जैसे एक युग से वह मेरे अपने हैं। तब एक झटका

लगा !

मेरी बेटी जिसे एक वष की आयु म छोडकर चला आया था। कितनी बडी

हो गयी होगी अब तक। शैली से अधिक बटी मुझसे हिला हुआ था। उसका स्नेहविभोर करता था पल पल। एक लम्बी सुरंग म जलती हुई ढिबरी की तरह।
ड्राइगरूम म उसके प्रवेश के साथ ही मैंने उसे पुकार दिया, 'बटी।'' 'हैलो, अक्ल।''
''नमस्त।'' बिल्कुल बच्चो की सी मुद्रा मे हाथ जोडकर मैंने कहा तो वह खिसिया सा गया क्योकि नमस्त पहले उसे करनी थी।
कानन हस पटी थी, एक उदास सी हसी।
खिसियाहट मे उसने नमस्ते का प्रत्युत्तर दे दिया।
''बेटे।'' जेब म हाथ डालते हुए मैंने कहा, ''तुम्हारा चॉक्लेट।''
जसे वह चॉक्लेट लेने ही आया हो रोजाना की तरह। वह जब बाहर लौट चला ता मैंने पूछा ' बटी! अकल के पास बैठोगे नही?''
''बठूगा,'' उसका उत्तर था, ''अभी तो आप यही हैं न थोडा खेलकर आता हू ''

कमरे म फिर सन्नाटा छा गया। मैं और कानन आमने सामने बैठे थे। दूर खोए हुए अपने अन्तर के अकेले पथिक। मेरे भीतर सुलगी चिगारी प्रकाशमान हो उठी थी और कानन के भीतर एक जबरदस्त द्वद्व चल रहा था। जिसकी काली छाया उसके चहरे पर तैर रही थी।
मन सिगरेट सुलगा ली और पहल कश का धुआ छत की ओर छोड दिया।
हम दोनो के बीच एक अनन्त आकाश पसरा हुआ था और सिगरेट का धुआ आवारा, जलहीन बादलो सा इसम भटक रहा था। वर्षा के बाद हल्के फुल्के, फुदकत बादल।
कानन कितना अधेरा भीतर समेटे हुए है और मेरे भीतर का अधेरा नही वह उगला नही जा सकता, बाप-बेटे का वैमनस्य, पति पत्नी के बीच की खाई। यू भी किसी के सामने अपनी पारिवारिक स्थिति का वणन करना असहज होता है। चाहे अनचाहे प्रश्नो के जग लग खजर शरीर की भावना को बेंधने लगते हैं।
सिगरेट राख हो गयी थी। उसके आखिरी टुकडे को ऐश-ट्रे म मसलते हुए मैंने कहा ''चलता हू।''
कानन विमूढ थी, सज्ञा शून्य सी। मेरे उठ जाने पर उसन सुरग म भटकती सी आवाज म पूछा ''चाय नही पीओगे?
मैंने उत्तर नही दिया। सुस्ताने के बाद ज्यो एक लम्बी कठिन यात्रा पर निकलना होता है, चल दिया।

कानन के भीतर लगातार गडगडाहट कौंधती रही। भीतर लगातार वर्षा होती जा रही थी। बडी बडी बूंदा वाली वर्षा ! बाढ़ लाकर ताडव मचाने वाली वर्षा ! पर बहुधा शकाए निमूल सिद्ध हो जाती हैं। कई बार पानी खतरे के निशान का पार भी कर जाए तो भी बाढ नही आती। कानन के भीतर भी ऐसा ही था। कितने ही कुए झीलें, तालाब और सूखी नदिया वर्षा के इस पानी को अपने भीतर समेट कर बाढ़ की आशका को निर्मूल कर रहे थे।

तूफान बिना किसी आहट, शोर शराबे और हगामे के चल रहा था। पानी जमीन को ढक रहा था। टापू शेष बच रहे थे।

बहुत-से सम्ब धो का गतव्य इन्ही टापुओ का सा होता है। अपरिभाषित ! अनिश्चित ! और जीवन भर सालते हैं, कसक बनकर कुछ बधन। जी नही था कानन का कि इस आफत स घिरे, फिर जीवन भर तिल तिल जिए पर रेत सने रेगिस्तान मे पानी का छोटा सा स्रोत फूट पडा हो उस छाह पान का मन भी कहा होता है।

वह सीढ़िया चढ़कर छत पर आ गयी।

कैसे-कैसे रगीन स्वप्न देखे थे उसने। कल्पनालोक में विचरने वाली कोई परी उसके दिल पर हावी थी। उसका सुरीला कठ, जिसकी आवाज उसे खुद को विभोर करती थी आज बियावान म खोए पथिक सा, एक बिसरा राग अलापने भर का माध्यम बचा है, यथार्थ के अगारो स उसके सारे सपने जल भुन चुके हैं। उस रोमानी ससार मे लौटा का अब क्या लाभ।

पश्चिम क क्षितिज का आग का तपता गोला दिन भर की थकान समेट रात के गभ म विश्राम के लिए लौट चला था। क्षितिज के पास ठडक पाने को व्याकुल सूरज ! सुदूर पहाड की चोटी पर आधा इधर और आधा उधर। विचित्र लाली मे खोया था क्षितिज। वह भी बट गयी थी सुशील और राकेश के बीच मान्यता और अवैधता के बीच !

सुशील उसका पति जिसे समाज उसका होने की पूरी मान्यता देता है। राकेश जो उसका नही, समाज उसे अवैधता से अधिक कुछ नही मानेगा।

पर चाहकर भी राकेश के प्यार को वह नकार सकेगी ? कितनी भावना कितना दद, कितनी वेदना समेटे हुए है वह अपनी पसलियों के बीच। उससे दूर रह पाएगी। ले पाएगी चैन की सांस और पास लाने के लिए सिर्फ व्याकुल रहेगी।

पृथ्वी पर अधकार की परत लगातार गहराने लगी थी अजीबोगरीब सी सांय-साय करती हवा कानन के पल्लू को उडने पर आतुर, उसके बालो स खेलने लगी थी। कानन को लगा इस वायु की एक लहर राकेश है। जैसे राकेश के पुरुषो

चित दप से युक्त हाथ उसकी काली सघन कोमल केशराशि से खेल रहे हैं, हवा का एक झोंका राकेश का स्वर बनकर 'कानन कानन' पुकार रहा है।

वटी घर मे घुसकर 'मम्मी मम्मी' पुकारने लगा था। कानन का चित्त एकात चाहता था। भीतर का अकेलापन बाहरी सन्नाटा चाह रहा था। हवा की यह तरगें, जहा राकेश क अस्तित्व को आमन्त्रित करने वाली अनुभूति की, वह कैसे छोड दे।

मम्मी। कहा हो मम्मी ?"

कल्पना क रग घुल गए। शेप बची रह गयी स्याह स्लेट जिस पर भावना का बाझ लाद कानन भटकी हुइ आत्मा की तरह सिसकती विचर रही थी।

कानन का प्यार पा लेने के बाद मैं उसक सामीप्य के लिए भयानक रूप स व्यग्र रहने लगा।

सामाजिक नतिकताओ की सब परिभाषाए मुझ बेमानी और खोखली दिखने लगी। पछी समाज की गिद्ध दृष्टियो क जाल म फड़फड़ाने लगा था। हर सांस म एक घुटन थी मानो वातावरण म कोई जहरीली गस भर दी गयी हो।

कानन से सिफ मिल भर पान क लिए इतनी विवशता इतना मजबूर तो नही होना चाहिए आदमी। मन करता था नतिकता के सब फदे तोडकर अपने प्यार को आगोश म समेट लू। पर बहुत से नाजुक दिखने वाले फदो का तोडना बहुत कठिन हाता है। पत्रो का सहारा लिया, पर समय सिकुडन लगा। एक लमहा चुरा पाना भी कठिनतर था।

कभी कभी मरीचिका भी प्यास जीवित रखती है, जिसे पाने के लिए कितने रेगिस्तान लाघ दता है। आदमी मेरे सामने कानन का अस्तित्व ही मरा जीवन था जिसे पाने के लिए प्यासे पथिक सा मैं लगातार दौडता जा रहा था विक्षिप्त-सा। खुद पर झुझलाता पागलो-सा भटकता। एक भावनात्मक अभाव फनिहर साप की तरह मुझे लगातार डसता रहता था।

उस दिन छुट्टी थी।

अपना थका-टूटा, आहत सा मुख लिये मैं उसके घर पहुचा था। होठो पर एक भीष्ण प्यास थी। मजबूरी की चाशनी म खो गयी प्यार को पाने की अनन्त प्यास।

सुशील कहा है ?' मैंने पूछा था।

सुबह ही कही चल गए हैं कुछ बताकर तो नही गए।'

कानन।' सोच के जाल म भटकते हुए मैंने कहा, पास-पास रहकर भी इतना अजनबी कैसे होता है आदमी ?'

उसने उत्तर नही दिया। शायद मम का कोई कोमल कोना इस प्रश्न के स्पश

से जख्मी हुआ हो।

पुन चुप्पी छा गयी।

इस निर्जीव चुप्पी के किनारो को छेडते हुए मैंने कहा, "तो चलू मैं ?'

'तो आए किसलिए थे' की ही निश्चित दृष्टि थी, जिसके उत्तर म, 'मेरे सिफ सामने आ जाने भर स पता नही तुम क्यो चुप जाती हो, ही कहना मुझे उचित लगा।

एक मुस्कान बिखरी। वेदनायुक्त ! खोहो म भटकती काई मुस्कराहट, फिर अनायास जैसे कुछ याद आया हो, 'राकेश ! तुम्ह बताना भूल गयी थी। आज कल मैं हर शुक्रवार सतोषी माता का व्रत रखती हू पता है क्यो ?'

'मागना होगा अपनी सतोषी माता से कुछ तो उस रिश्वत द रही हो "

"मैं मा स प्राथना करती हू कि तुम्हारे जीवन मे खुशियां लौट आए।"

किसी अलौकिक शक्ति म कभी मेरी कोई आस्था रही हो, मुझे याद नही। पर यह सुनकर भावना के एक सैलाव ने मुझे अपने भीतर समेट लिया। उसके समीप जा, रोमाचित होकर उसके कोमल हाथो को कसकर चूम लिया।

"मुझे इतना विभोर न करो, कानू कि मैं सारी सीमाए लाघकर बौखला जाऊ।"

अपनत्व का एक सागर उसके नेत्रो म हिलोरें मार रहा था।

तुम्हारे लिए मैं कुछ भी कर सकती हू।'

"तो फिर मुझे भी तुम्हारी खुशी की वापसी के लिए तपस्या करनी पडेगी।"

आखो के भीगे पोरो को पोछते हुए उसने उत्तर दिया, 'राकेश बाबू तुमने मेरी भावना की कद्र की मेरे लिए यही क्या कम है "

'अच्छा बन्द करो यह फलसफा कभी एकाध टुकडा सुख मिलन लगता है तो तुम दाशनिक हो जाती हो।"

वह मुस्कराई। एक बेबस, असमथ सी मुस्कराहट।

दरवाजे पर आहट। पडोस की कोई स्त्री थी। उसे दूसरे कमरे मे बिठाकर वह पास आकर बोली, "अब तुम जरा अकेले बैठो। तब तक मैं चाय बनाकर लाती हू "

'तुम्हे याद नही कि मैं "

'चाय नही पीते," उसने मेरे कथन को पूरा किया।

"दूध पिऊगा पर ठडा एकदम बफ हो। भीतर की कुछ जलन तो शात हो।"

-

दूध पीकर मैं सडक पर निकल आया। थोडी सी बातें करके मैं कितना हल्का फुल्का महसूस कर रहा था। मन तो करता है, बस उसके ही पास बैठा रहू पर उसकी भी

अपनी एक सामाजिक स्थिति है। घर, परिवार, बच्चे, पति और आस-पडोस पता नही क्यो मैं चाहता हू कि उसका सारा समय केवल मेरे लिए हो।

सिगरेट के लिए जेब मे हाथ डाला तो चॉकलेट का पैकेट हाथ लगा। बटी घर पर नही था तो जेब मे ही रह गया। कितना आत्म-विस्मृत हू आजकल। हर वक्त सिर्फ कानन ही ख्यालो पर हावी है। हृदय के ज्वार मे मचलती ! किताब के पन्ना पर उभरती ! आख की पुतलिया म समाई सी !

मुझे किसी सिद्धान्त पर कोई भरोसा नही रहा है। सिर्फ कानन की सामाजिक स्थिति रोक रही हैं, किसी हद तक। नही तो मचलता यह भाटा सब किनारो को बहाकर ले गया होता।

राकेश के चले जाने के बाद कानन क मन का अधकार कल्पनाओ म विश्राम पाने की कोशिश करन लगा। कितना फसा दता है वक्त आदमी को। बच्चे—शैली और बटी, सुशील—उसका पति, यह घर, समाज, रिश्त, पडोसी राकश, वह अकेली ! सामाजिक मजबूरिया, आदर्शों का उबलता तेल, वह कस और कहा तक टूट पाएगी। झील म पडे जाल म फसी हुई मछली की तरह वह बस छटपटा सकती है।

ठीक है, सुशील ने उसे कभी माफ नही किया, पर है तो वह उसका पति ही। खुद को भी उसन बेबात सजा दी है। अपने जीवन मे भी सूनापन भरा है उसने

राकेश भी विचित्र है। सिर्फ बातें करके ही सतुष्ट हो जाता है। कितना नि स्वार्थ, प्रेम, कितनी सच्ची भावना ! दो मीठे बोल बोलने के लिए कितनी ही सीमाए लाघ देता है आदमी ! कितना बिखरा हुआ है। उलझे बाल, हफ्तो शेव नही बनाता, कपडा पर कभी प्रेस नही, जूत बिना पालिश के ही फट जाए। जाने कुछ खाता भी कि वह खाने बैठती है तो कौर बाहर निकल आता है। पता नही कहां भटक रहा होगा पागलो की तरह। मन करता है पटरी पर ले आए उसका जीवन, पर

सुशील उसका पति है !

चेहरे पर बैठी मक्खी उडाने के लिए हिला हाथ नाक की नोक को छू गया। उसे अनायास हसी आ गयी। राकेश को बहुत अधिक प्यार आता है तो कानन के नाक की नुकीली नोक का छू लेता है। बस !

'ऐसा क्यो करते हो ?"

"सोचता हू, तुम्हारी नाक को कितना फुसत से घडा गया है इस पर मिट जान को जी चाहता है।"

अपने बारे मे कोई टिप्पणी कभी कभी कितना सुखद लगती है।

"क्यो करते हो इतना प्यार मुझे ?"

वह कही खो गया।

फिर एक लम्बे नि श्वास के साथ स्वर फूटा, "कानू ! जीवन मे सभी प्रश्न के उत्तर नही होते।"

'कभी परिणाम के बारे म भी कुछ सोचा है ?"

वह उदास हो गया, 'तुम्हारे ससग म जा टुकडा भर सुख कभी मिलना है उसे भुलाकर परिणाम बारे क्या सोचू ?'

'बहुत भावुक हा तुम्हें ता औरत होना चाहिए था।'

वह मुस्कराया नही था। अधिक गम्भीर होकर बाला, "ता तुम्हारी तरह किसी के घर की शोभा बढाता !"

वह कमरे म पसरी हवा म खो गयी।

'चलता हू तुम्हार हाथ का ठडा दूध पीना अभी बाकी है।'

कानन उठी।

कितना मासूम सा बच्चा है, भोला-सा। इस मासूमियत पर प्राण न्योछावर कर दन का मन हाता है। इस भीषण ठड मे लोग गम गम चाय चुसकत हैं और इसे चाहिए बफ सा ठडा दूध। कितनी गर्मी समेटे है भीतर वह इतना मजबूर न होती, काश !

दूध के घूट भरते हुए वह अधिक उदास था।

"क्या सोच रहे हो ?"

"हू," वह चौंका, "कुछ नही "

"कुछ तो "

"हा, कानू कभी-कभी सोच के बीहडो मे भटकने लगता हू। पता नही तुमने भी ठुकरा दिया तो कैसे जी पाऊगा ।"

'कभी ऐसा भी हो सकता है, राकेश ?"

'कानू ! कुछ भी हो सकता है। मानव मन बडी विचित्र अनुभूति है। कभी किसी का प्यार पाने के लिए तरसता भटकता है, उसे पा लेने पर फिर एकाधिकार चाहने लगता है।"

"मेरे हृदय पर पहला अधिकार तुम्हारा ही है।"

उसकी दृष्टि निरीह थी।

"मैं समझता हू वह सुशील का है।"

'सिफ तन पर मन पर तुम हावी हो।'

'कानू ! मैं भी आदमी हू अनिश्चित सत्ता के अधिकार पर अधिक दिन न जी पाऊगा यू भी आजकल मैं बहुत टूट चुका हू। खुद भी मुझे अपने जीवन पर भरोसा नही रहा है।"

"राकेश ! मैं बहुत मजबूर हू ।" नेत्र के पोरो को पोछते हुए उसने कहा।

दूध का आखिरी घूट भरकर वह चल दिया था।

कानन न अपने नाक की नोक को एक बार फिर छुआ। स्मतिया मुह का स्वाद कितना बिगाड देती हैं।

तभी दाना बेटे लौट आए थ।

'कानू! एक बात पूछता हू हम मिल पाने क लिए बहानो की तलाश क्यो जरूरी है? क्या हम सिफ अपने लिए नही मिल सक्ते?'

एक गहरे साम क खीच जान की आहट। फिर दूर कही पडती एक उदास दृष्टि और तब एक क्षीना-सा स्वर, राकेश! तुम इतने समझदार हो फिर बेनाम रिश्तो की परिभाषा मुझसे पूछते हो।'

लम्बा सास निगलने की बारी अब मरी थी तुम सोचते बहुत हो।" आगे जोडी थी बात उसने।

"सच कानू! बहुत दिनो स मुझे सिफ तुम्हारे बारे मे ही सोचते रहने की बीमारी हो गयी हो। लगता है मरे दिमाग म सोच की मकडी एक ऐसा जाल बुन रही है, जिसके कारण मैं सिफ छटपटाता रहूगा।"

फिर एक गहरा सन्नाटा पसर गया।

और तभी सुशील ने घर के भीतर प्रवेश किया। उसके चहरे पर बहुत से रग बारी बारी स चढने-उतरने लगे। उस रोज की तरह वह चहका भी नही। सागर मन न जान कब कहा सिकुड जाए।

कानन सामने से उठकर जा चुकी थी।

चाय सुडक्कर मैं वापस आ गया।

कानन ने किस सफाई से खुद को बचा लिया था।

सुशील के आते ही कमरे स खिसक गयी। क्या हर आदमी स्वय को सुरक्षित रखकर ही पासा फेंकता है। एक राकेश ही जिस सबने फुटबाल की तरह खेला है। पिता, परिवार, पत्नी

चपा। मेरी बेटी! उसे नही मालूम बाप का प्यार क्या होता है

आधी रात तक दिल मे एक भीषण उद्वेलन हुआ। काली अधियारी रात म एक भयकर दद पर मुझे जीना था। जीवन के प्रति मेरी एक गहरी आस्था है।

कानन से बिछोह की अनुभूति मे समय की सूखी लकडी को अपनी मजबूरी क आरे से निरतर काटता रहा।

कानन ने एकाएक मुझसे दूरी का दायरा क्यो बढा दिया, नहीं मालूम, पर मेरा जहान प्राय डूब गया था।

पागलपन की सीमाए दूर नहीं थी।

जनवरी का वह अंतिम दिन था।

क्वाटर के दरवाजे पर पहुचते ही मेरी आंखें फटी रह गयीं।

मेरी पत्नी अपने भाई के साथ चार वर्षीय चपा को सभाले मेरा इन्तजार कर रही थी।

मेरे आश्चर्य का शमन करते हुए उसका भाई कह रहा था, "तारा को इसके सास-ससुर ने बहुत तग किया   कहते थे इसका खसम इसे छोड़कर चला गया है   इसके रोटी कपड़े का ठेका हम क्यो लें   अब आप ही तो इसका सहारा हैं "

□□
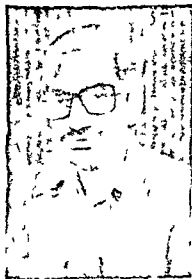
राजकुमार राकेश

जन्म 8 नवम्बर, 91, हिमाचल प्रदेश म मण्डी जिले के सरकाघाट के समीप छोटे से गाव चम्याणु मे।

शिक्षा बी० एस सी०, एम० ए० (हिन्दी), एम० ए० (अर्थशास्त्र)पत्रकारिता, सम्पादन व पत्रिका सचालन मे डिप्लोमा, बी-एड०।

प्रकाशन हिमाचल प्रदेश कला, सस्कृति व भाषा अकादमी के तत्वावधान म एक उपन्यास 'विभीषिका' एव एक काव्य-सग्रह 'बदली से झांकता सूरज' प्रकाशित। इसके अतिरिक्त घाटियो की गध, चिंगारिया, आहटें-नयी सदी, टूटते चक्रव्यूह, खामोशी पिघलती रही, वीर प्रताप, ट्रिब्यून, कथालोक, विश्वज्योति, पजाब-सौरभ, हिमप्रस्थ, गिरिराज, विपाशा, मुक्ता, *भू भारती, मधुमती, युग मर्यादा, स्वाती, शैल पुत्र* आदि सकलनो व पत्र-पत्रिकाओ म कहानिया, लेख व कविताए प्रकाशित।

सम्प्रति कुछ वर्ष अध्यापन के बाद अब हिमाचल प्रदेश खाद्य-आपूर्ति विभाग मे उच्चाधिकारी।

सम्पर्क सूत्र जिला खाद्य व आपूर्ति नियत्रक मुख्यालय, साटावा हाउस, शिमला